यजुः०

॥ ओ३म् ॥

कठोपनिषद्

KATH-UPNISHAD

IN

Hindi & English

भाष्यकार

...गोपाल शास्त्री वैद्य

...कठोपनिषद् के भाष्यकर्त्ता

साम०

अथर्व०

मूल्य २.५०

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनाँक	सदस्य संख्या

दिनांक	सदस्य संख्या	दिनाँक	सदस्य संख्या

ऋग्०

॥ ओ३म् ॥

यजुः०

कठोपनिषद्

KATH-UPNISHAD

IN

Hindi & English

भाष्यकार

पं० रामगोपाल शास्त्री वैद्य

ईश तथा कठोपनिषद् के भाष्यकर्त्ता

साम०

अथर्व०

प्रकाशक—
कविराज कृष्णगोपाल एम० ए० वैद्याचार्य
आर्य्यसमाज रोड, करोल बाग, नई दिल्ली-५

विक्रमी संवत् २०३३] [सन् १९७७

मूल्य दो रुपया पच्चीस पैसे

मुद्रक—सुरेन्द्र कुमार कपूर
रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस, बहालगढ़, (सोनीपत)

ओ३म्

॥ भूमिका ॥

यजुर्वेद की १०१ शाखाएं थीं । उनमें से एक प्रसिद्ध कठशाखा थी । इस शाखा के रचयिता कठ ऋषि थे, इसलिए उसका नाम कठ शाखा पड़ा । यह उपनिषद् कठशाखा की है; इसलिए इसे कठोपनिषद् कहते हैं । इस उपनिषद् में २ अध्याय और ६ वल्लियां हैं । प्रथम अध्याय की प्रथम वल्ली में २९, दूसरी में २५, और तीसरी में १७ मन्त्र हैं, अर्थात् सर्वयोग ७१ मन्त्रों का है । द्वितीय अध्याय चौथी बल्ली में १५, पांचवीं में १५, और छठी में १८ मन्त्र हैं । इस प्रकार द्वितीय अध्याय में ४८ मन्त्र हैं । सारी उपनिषद् में सर्वयोग ११९ मन्त्रों का है ।

इस उपनिषद् में यम और नचिकेता के संवाद रूप में एक काल्पनिक कथा के द्वारा आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में गूढ़ तत्त्व का वर्णन किया गया है । मरने के अनन्तर जीवात्मा की सत्ता रहती है वा नहीं ? इस प्रश्न को, जो प्रतिदिन मनुष्यों के हृदयों में उत्पन्न होता है, बहुत ही रोचक रूप में बताया गया है ।

यम गुरु और नचिकेता शिष्य, ये ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं थे, केवल आख्यायिका रूप में समझाने के लिए इन नामों की कल्पना की गई है । कई भाष्यकार इन्हें ऐतिहासिक व्यक्ति मानते हैं, उनका यह विचार निराधार है । इसके लि [...] किए जाते हैं । ऐतिहासिक नामों में पर्या [...] नहीं होता । इस उपनिषद् में १।१।४ मन्त्र में [...] ।५ मन्त्र में मृत्यु के स्थान पर यम पद का [...] १।१।२६

में मृत्यु को अन्तक अर्थात् सब का अन्त करनेवाला यह नाम दिया गया है। ये तीनों पर्यायवाचक पद सिद्ध करते हैं कि; यम मृत्यु का नाम है कोई व्यक्ति विशेष नहीं। मन्त्र १।१।१२ में पाठ आया है कि "न तत्र त्वम्" हे मृत्यु ! स्वर्ग लोक में तुम नहीं हो। मन्त्र १।२ ६ में "अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे" अर्थात् जो वित्तमोह में मूढ़ है, वह बार-बार मुझ मृत्यु के वश में आता है। यदि यम पद से ऐतिहासिक पुरुष अपेक्षित होता, तो इन दो मन्त्रों में आए हुए पाठ निरर्थक हो जावेंगे क्योंकि; मृत्यु स्वर्ग में नहीं है और बार-बार मृत्यु के वश में पड़ना है यह आलंकारिक भाषा में ठीक बैठता है। मन्त्र १।१।२८ में पाठ आता है कि "अजीर्यताममृतानामुपेत्य" अर्थात् अजर और अमर व्यक्तियों के पास पहुंच कर, इस मन्त्र में अजर और अमर पद यम के लिए है, इस मन्त्र से भी सिद्ध है कि, मृत्यु काल का नाम है, किसी व्यक्ति विशेष का नहीं। कोई भी ऐतिहासिक पुरुष अजर और अमर नहीं हो सकता। अनेक अन्य प्रमाण भी इसी उपनिषद् में आये हुए सिद्ध करते हैं कि; उपनिषद् की यह कथा आलंकारिक है, ऐतिहासिक नहीं।

कथा मूल

कठोपनिषद् की कथा का मूल तैत्तरीय ब्राह्मण ३।११।८ में बहुत ही स्पष्ट रूप में पाया जाता है--

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ। तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस। तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश। स होवाच। तत कस्मै मां दास्यसीति। द्वितीयं तृतीयम्। तं ह परीत उवाच। मृत्यवे त्वा ददामीति॥

(फल) चाहते हुए वाजश्रवस ने (यज्ञ में) अपना सारा धन दे दिया। उसका नचिकेता नामी एक पुत्र था। अभी वह कुमार ही था, जब (उसके पिता से ऋत्विजों को) दक्षिणा दी जा रही थी, तो उसमें श्रद्धा प्रविष्ट हुई, उसने कहा पिता ! मुझे किसको दोगे ? उसने दुबारा और तिबारा कहा । पिता क्रोध से भर गया और बोला—"तुझे मृत्यु को देता हूं" ॥

हं हस्मोत्थितवागभिवदति गौतमकुमारमिति । स होवाच परेहि मृत्योर्गृहान् । मृत्यवे वै त्वाऽदामिति । तं वै प्रवसन्तं गन्तासीति होवाच तस्य ह स्म तिस्रो रात्रीरनाश्वान् गृहे वसतात्। सः यदि त्वा पृच्छेत् । कुमार कति रात्रीरवात्सीरिति तिस्र इति प्रतिब्रूतात् । किं प्रथमां रात्रिमाश्ना इति प्रजां त इति, किं द्वितीयामिति पशूंस्त इति, किं तृतीयामिति साधुकृत्यां त इति ॥

तब उस गौतम कुमार को वाणी ने कहा कि तुम्हारे पिता ने कहा है तुम मृत्यु के घरों को जाओ। मैंने तुझे मृत्यु को दे दिया है, और कहा कि तुम उस समय जाओ, जब मृत्यु घर से बाहर हो और तीन रात बिना खाये हुए उसके घर में रहो। यदि वह यम तुझे पूछे कुमार ! तू कितनी रात यहां रहा है ? तो तुम उत्तर देना तीन। तुमने पहली रात्रि को क्या खाया ? तेरी प्रजा। दूसरी रात्रि को क्या खाया ? तेरे पशु। तीसरी रात को क्या खाया ? तेरे शुभ कर्म्म।

तं वै प्रवसन्तं जगाम । तस्य ह तिस्रो रात्रीरनाश्वन् गृह उवास । तमागत्य पप्रच्छ । कुमार कति रात्रीरवात्सीरिति । तिस्र

इति प्रत्युवाच । किं प्रथमां रात्रिमाश्ना इति । प्रजां त इति । किं द्वितीयामिति । पशूंस्त इति । किं तृतीयामिति । साधुकृत्यां त इति॥

वह मृत्यु के पास गया जब वह परदेश में था और तीन रात्रियें उसके घर में बिना खाए रहा। जब मृत्यु घर आया तो उसने पूछा कुमार! कितनी रात्रियां यहां रहे हो? उसने उत्तर दिया—तीन। पहली रात्रि को क्या खाया? तेरी प्रजा। दूसरी को क्या खाया? तेरे पशु। तीसरी को क्या खाया? तेरे शुभ कर्म्म।

नमस्ते अस्तु भगव इति होवाच । वरं वृणीष्वेति ।

यम ने कहा—"भगवन् तुझे नमस्ते। वर मांग ले।"

पितरमेव जीवन्नयानीति ।

(उसने कहा) मैं जीता हुआ पिता के पास लौट जाऊं।

द्वितीयं वृणीष्वेति ।

अब दूसरा (वर) चुन ले।

इष्टापूर्तयोर्मेऽक्षितिं ब्रूहीति होवाच ।

(उसने कहा) मुझे बतलाओ कि किस प्रकार से मेरे इष्ट और पूर्त (यज्ञ और दूसरे शुभ काम) नष्ट न हों।

तस्मै हैतमग्निं नाचिकेतमुवाच । ततो वै तस्येष्टापूर्ते न क्षीयेते । नास्येष्टापूर्ते क्षीयेते, योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते, य उ चैनमेवं वेद ॥

(यम ने) उसको यह नाचिकेत अग्नि बतलाई। इससे उसके इष्ट

और पूर्त नहीं क्षीण होते, जो यजमान नाचिकेत अग्नि को चिनता है और जो इस रहस्य को जानता है ॥

तृतीयं वृणीष्वेति ।

(अब) तीसरा (वर) चुन ले ।

पुनर्मृत्योर्मेऽपजितिं ब्रूहीति होवाच ।

मुझे बताओ पुनर्मृत्यु को जीतना ।

तस्मै हैतमग्निं नाचिकेतमुवाच । ततो वै सोऽपपुनर्मृत्युमजयत् । अपपुनर्मृत्युं जयति, योऽग्निं नाचिकेतं चिनुते य उ चैनमेव वेद ॥

उसको उसने यही नाचिकेत अग्नि बतलायी । उससे उसने पुनर्मृत्यु को जीत लिया । अब भी वह पुरुष पुनर्मृत्यु को जीत लेता है, जो नाचिकेत अग्नि को चिनता है और वह जो इस (रहस्य) को जानता है ॥

इस प्रमाण से यह सिद्ध है कि; तैत्तरीय ब्राह्मण की कथा का आश्रय लेकर इस उपनिषद की रचना की गई है। महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ७१ में भी इसी प्रकार की एक कथा आई है—

एक समय उद्दालक ऋषि ने यज्ञ की दीक्षा लेकर अपने पुत्र नाचिकेत से कहा कि बेटा ! मैं समिधा, कुशा, फूल, तथा भोजन सामग्री नदी तट पर भूल आया हूं, तुम जाकर ले आओ ।

नदी तट से लौट कर, पुत्र पिता को बोला कि पिता जी ! नदी तट पर कुछ नहीं, वह सामग्री नदी के वेग से बह गयी है ।

भूख, प्यास और थकावट से खिन्न हुए ऋषि ने पुत्र को शाप दे दिया कि—

यमं पश्य । अ० ७१ । श्लोक ।।७।।

तू मृत्यु का मुख देखो ।

पिता के शाप से पीड़ित नाचिकेत ने कहा कि; पिता जी प्रसन्न हूजिये । इतना कहकर वह भूमि पर गिर गया और निष्प्राण हो गया ।

पुत्र को निष्प्राण देखकर ऋषि रो पड़ा । उसकी अश्रुधारा से भीगता हुआ मृत नाचिकेत हिलने लगा और जीवित हो गया । जीवित पुत्र को देखकर पिता ने कहा बेटा ! अब तुम शुभ कर्मों से मेरे पास आये हो, तुम दिव्य शरीर हो गये हो ।

नाचिकेत ने उठकर पिता को कहा कि; पिताजी ! जब मैं यमपुरी में पहुंचा तो, यम ने जल से मेरा अर्घ्य किया और बोला नाचिकेत ! तुम मरे नहीं हो, तुम्हारे पिता ने तुम्हें यम को देखो ऐसा कहा था, सो तुमने मुझे देख लिया है, अब वापिस लौट जाओ । तुम मेरे प्रिय अतिथि हो मनोवांछित वर मांग लो ।

मैंने यमराज से कहा कि यदि आप वर देते हैं तो, मुझे उन लोकों को दिखायें जहां पुण्यवान् जीव रहते हैं ।

यम ने मुझे रथ पर बिठाकर पुण्यलोक दिखलाये । मैंने पूछा कि; इन लोकों में किन का वास होता है । यम ने कहा, यहां वे वास करते हैं, जो गौओं का दान करते हैं वे मरकर यहां रहते हैं ।।

।। गीता मूल ।।

श्रीमद्भगवद्गीता, अध्यात्मवाद की संसार में श्रेष्ठ पुस्तक मानी

गई है और गीता उपनिषदों के आधार से रची गई है। इसके लिये देखो—

कठोपनिषद् १।२—

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥१८॥
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥१९॥

इसके साथ मिलाओ गीता अध्याय २ के श्लोक—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥१९॥
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥२०॥

कठोपनिषद् के इन मन्त्रों और गीता के श्लोकों के उद्धरणों से स्पष्ट है कि; गीता के निर्माण में उपनिषदों का आश्रय लिया गया है। जो अध्यात्मवादी आत्मज्ञान के अमृत का पान करना चाहते हैं, उन्हें अध्यात्मवाद के शुद्ध स्रोत उपनिषदों का अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

इस उपनिषद् में जीवात्मा की नित्यता के सम्बन्ध में वर्णन है। प्रत्येक पुरुष के मन में सदा यह विचार उठता है कि; मरने के पीछे पुरुष की आत्मसत्ता रहती है व नहीं? जब प्राण पखेरू उड़ जाता है, तब प्रिय सम्बन्धियों के मन में विचार बार-बार उठते हैं कि; कल तक जो हमारे मध्य में था,हमारे साथ खाता, पीता, बोलता था, आज इस संसार में नहीं है। कोई तो यह भी कह देते हैं कि;

आत्मा की कोई भिन्न सत्ता नहीं वह तो पांच तत्त्वों के मेल से बना बना था, और मर कर पांच तत्त्वों में मिल गया। इस प्रकार के आवश्यक, विषय को बहुत ही सरल रूप से यम और नचिकेता के संवाद रूप में बताया गया है।

इस उपनिषद् की तीसरी वल्ली के पहले मन्त्र में दो आत्म-तत्त्वों का उल्लेख है। एक को छाया और दूसरे को आतप के समान उपमा देकर यह प्रमाणित किया है कि, एक अविद्यान्धकार की छाया से युक्त अल्पज्ञ जीवात्मा है और दूसरा प्रकाशस्वरूप परमात्मा है।

ग्रन्थ में दोनों के लिए आत्मा पद प्रयुक्त हुआ है। इसी कारण पाठकों को बहुत स्थलों में भ्रम हो जाता है कि, यहां आ मा पद से ब्रह्म का ग्रहण करें वा जीव का। ऐसे स्थलों का निर्णय करने की एक ही कसवटी है; कि जहां शरीरधारी देही आदि गुणों का वर्णन हो वहां जीवात्मा, और जहां विभु व्यापक सर्व जगत् का आश्रय आदि गुण हों वहां परमात्मा को ग्रहण करना चाहिए। इस प्रकार भ्रान्ति नहीं होगी।

इस प्रकार उच्च और शिक्षाप्रद यह उपनिषद् परम आदर से देखी जाती है।

अंग्रेजी के अनुवाद में श्री गणपतराय जी तालवाड़ तथा रामशरणदास जी वसिष्ठ ने मेरी सहायता की है।एतदर्थ मैं उपर्युक्त इन दोनों सज्जनों का आभारी हूं।

करोल बाग, दिल्ली। निवेदक:
१-२-६७ रामगोपाल शास्त्री वैद्य

॥ ओ३म् ॥

कठोपनिषद्

THE KATH-UPNISHAD

उपनिषद् के आरम्भ और अन्त में शान्तिपाठ पढ़ने की प्राचीन शैली है। अतः आरम्भ में शान्तिपाठ दिया जाता है—

शान्तिपाठः

ओ३म् सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

पदार्थ—(सह) साथ-साथ (नौ) हम दोनों [आचार्य और शिष्य] को (अवतु) रक्षा करें। (सह) साथ-साथ (नौ) हम दोनों का (भुनक्तु) पालन करें। (सह) साथ-साथ (वीर्यं) विद्यावल (करवावहै) प्राप्त करें। (तेजस्वी) तेजस्वी (नौ) हम दोनों का (अधीतं) अध्ययन (अस्तु) हो। (मा) मत (विद्विषावहै) हम दोनों द्वेष करें॥

व्याख्या—उपनिषद् अध्ययन के आरम्भ में आचार्य और शिष्य दोनों मिलकर, उस प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि; हे प्रभो ! हम दोनों की साथ-साथ आप रक्षा और पालन कीजिए। आपकी कृपा से हम

दोनों विद्यासम्बन्धी बल को प्राप्त करें। हम दोनों का अध्ययन तेजस्वी अर्थात् सफल हो। हे परमेश्वर! हम गुरु शिष्य कभी भी परस्पर द्वेष न करें। हे परमात्मन्! आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों प्रकार के दुःखों की शान्ति हो ॥

SHANTI PATH*

May God protect us both (the preceptor & the disciple), may God sustain us both, may God give us both the strength to work together, to keep in the patb of knowledge, may our knowledge lead us to glory. May we never be innimical to each other !

PEACE PEACE PEACE

*This was a tradition in ancient India that every Upnishad had its own Shanti-Path to begin with and at the end.

प्रथम अध्याय

प्रथम वल्ली

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ।।१।।

पदार्थ—(उशन्) कामना करते हुए (ह, वै) (वाजश्रवसः) वाश्रवस नामक पुरुष ने (सर्ववेदसं) सब धन को [सर्वमेध नामक यज्ञ में] (ददौ) दिया। (तस्य) उस वाजश्रवस का (ह) (नचिकेता नाम) नचिकेता नाम-वाला (पुत्रः) पुत्र (आस) था ।।१।।

व्याख्या—परलोक में कल्याण चाहनेवाले वाजश्रवस नामक पुरुष ने, सर्वमेध यज्ञ किया; उसने भूमि गौ आदि अपना सारा धन दान दे दिया। उस वाजश्रवस का एक पुत्र नचिकेता था। जो इस यज्ञ को देख रहा था ।।१।।

SECTION 1

CHAPTER 1

1. Desiring heavenly bliss, one Vajshravasa by name gave away his all, in charity. He had a son Nachiketa by name.

तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु ।
नीयमानासु श्रद्धाविवेश सोऽमन्यत ।।२।।

पदार्थ—(तं) उस (ह) (कुमारं सन्तं) कुमारावस्था में वर्तमान [नचिकेता को] (दक्षिणासु) दक्षिणाओं के (नीयमानासु) ले जाए जाने पर (श्रद्धा) आस्तिक बुद्धि (आविवेश) प्रविष्ट हुई (सः) वह कुमार (अमन्यत) विचारने लगा ॥२॥

2. The young boy Nachiketa, having observed this giving away and understanding the reality, began to think (like this).

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥३॥

पदार्थ—(पीतोदकाः) पी लिया है जल जिन्होंने (जग्धतृणाः) खा चुकी हैं जो घास (दुग्धदोहाः) दूध जिनका दोहा जा चुका है (निरिन्द्रियाः) शिथिल इन्द्रियोंवाली [ऐसी गौओं को] (अनन्दाः) सुखरहित (नाम) नामवाले (ते) वे (लोकाः) लोक हैं। (तान्) उनको (सः) वह पुरुष (गच्छति) प्राप्त होता है [जो] (ताः) उन गौओं को (ददत्) देता है ॥३॥

व्याख्या—कुमार नचिकेता ने, जब अपने पिता वाजश्रवस को, यज्ञ में शक्तिहीन, वृद्ध गौओं को ऋत्विजों के प्रति दक्षिणा रूप में दान देते हुए देखा, तो उसके मन में आस्तिक बुद्धि उत्पन्न हुई, कि जो भी यज्ञ में इस प्रकार की वृद्ध गौओं को दक्षिणा रूप में देता है, उसे इस पुण्य के परिणाम में सुख-स्थान प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत आनन्द-शून्य लोक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार अपना यह भाव उस बालक ने पिता के समक्ष प्रकट करने के लिये पिता को कहा ॥३॥

3. He who gives in charity such useless, dry, old cows, can only land himself, verily. in joyless regions.

स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यसीति।
द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥४॥

पदार्थ—(सः) वह कुमार (ह) (उवाच) बोला (पितरं) पिता को (तत) हे तात! (कस्मै) किसको (मां) मुझे (दास्यसि इति) दोगे [इसी प्रकार] (द्वितीयं, तृतीयं) दुबारा तिबारा, (तं ह उवाच) उसे पिता बोला, कि (मृत्यवे) मृत्यु को (त्वा) तुझे (ददामि इति) देता हूं ॥४॥

व्याख्या—कुमार नचिकेता ने अपने पिता को जब अपने विचार प्रकट किए कि हे पिता! यदि आप सर्ववेदस् यज्ञ में सब कुछ दान कर रहे हैं, तो मैं भी आपका पुत्ररूप धन हूं, तो फिर मुझे दान-रूप में किसको देंगे? जब दुबारा और तिबारा कुमार ने ऐसा कहा, तो पिता क्रुद्ध हो गया और बोला कि तुझे मृत्यु को दूंगा ॥४॥

4. He thus addressed his father, 'Father! whom wilt thou give me?' This he repeated twice, thrice. Father retorted that he would hand him over to Yama (death).

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः।
किं स्विद्यमस्य कर्त्तव्यं यन्मयाऽद्य करिष्यति ॥५॥

पदार्थ—(बहूनाम्) बहुतों में से (एमि) मैं हूं, (प्रथमः) प्रथम (बहूनाम्) बहुतों में से (एमि) मैं हूं (मध्यमः) मध्यम (किं स्वत्) कौन-सा (यमस्य) यम का (कर्तव्यम्) काम [होगा] (यत्) जो (मया) मेरे द्वारा (अद्य) आज (करिष्यति) करेगा ॥५॥

व्याख्या—जब क्रोध के आवेश में पिता ने पुत्र को कहा कि, तुम्हें मृत्यु को दूंगा, तो नचिकेता ने अपने मन में विचारा कि, कई

शिष्यों में से मैं प्रथम अर्थात् उत्तम हूं, कइयों में से मैं मध्यम हूं। यम का ऐसा कौनसा काम होगा, जो आज मेरे द्वारा वह पूर्ण करेगा ?॥५॥

5. Nachiketa thought within himself, "Out of many, I am the first and middling among many others, I wonder, what precisely will be the object of Yama that I shall serve?"

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे ।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥६॥

पदार्थ—(अनुपश्य) देखो (यथा) जैसे (पूर्वे) पूर्व पुरुष [मर चुके हैं] (प्रतिपश्य) आगे देखो (तथा) वैसे ही (अपरे) दूसरे (सस्यम् इव) पकी खेती [=फ़सल] की नाईं (मर्त्यः) मनुष्य (पच्यते) पकता अर्थात् वृद्ध होकर मर जाता है (सस्यम् इव) खेती की नाईं (आजायते) उत्पन्न होता है (पुनः) फिर ॥६॥

व्याख्या—नचिकेता अपने मन में विचारता है कि, जब मैं यह अनुभव करता हूं कि हमारे पूर्व पुरुष इस संसार को छोड़कर चले गये हैं और दूसरे जा रहे हैं, यही प्रतीत होता है कि मनुष्य, जैसे अनाज की खेती पक कर गिर जाती है, और फिर उत्पन्न होती है, उसी प्रकार अनादि काल से मनुष्य का जन्म और मरण चक्र चल रहा है ॥६॥

6, Imagine who had preceeded & many who are yet to follow, human beings verily ripen like crop, wither and are born, again and again.

संगति—नचिकेता यम के घर पहुंचता है। यम घर में नहीं.

नचिकेता तीन दिन भूखा उसके यहां पड़ा रहा। यम के घर लौटने पर घर के लोगों ने उसे कहा—

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्।
तस्यैतां शान्तिं कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥७॥

पदार्थ—(वैश्वानरः) वैश्वानर अग्नि [रूप] (प्रविशति) प्रवेश करता है (अतिथिः ब्राह्मणः) ब्राह्मण अतिथि (गृहान्) घरों को (तस्य) उस अतिथि की (एतां) इस (शान्ति) शान्ति को (कुर्वन्ति) करते हैं (हर) लाओ (वैवस्वत) हे वैवस्वत! (उदकम्) जल को ॥७॥

व्याख्या - ब्राह्मण अतिथि के रूप में जब घरों में प्रवेश करता है तो,वह एक प्रकार की वैश्वानर अग्नि है। जैसे अग्नि को शान्त करने के लिए जल की आवश्यकता है; उसी प्रकार घर में आए हुए अतिथि के लिए गृहस्थ पाद्य तथा आचमनीय जल से उसका आतिथ्य करते हैं। इसी प्राचीन पद्धति का अनुसरण करते हुए, यम के घरवालों ने वैवस्वत को कहा कि, जो कुमार नचिकेता तुम्हारे घर में अतिथि-रूप से आया हुआ है, उसके लिए प्रथम जल लाकर उसका आतिथ्य कीजिए ॥७॥

When Nachiketa reached the house of Yamacharya, he was out and Nachiketa passed 3 days 3 nights outside his house without taking any food and water—when Yama arrived, his family members told him.

7. A learned guest entering any household, is verily a symbol of fire. Yama ! s/o Vaivasvat greet him with this peace offering so offer him water.

आशाप्रतीक्षे सङ्गतं सूनृतां च,
इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान्।

एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो,
यस्यानश्नन्वसति ब्राह्मणो गृहे ॥८॥

पदार्थ—(आशा प्रतीक्षे) आशा और प्रतीक्षा (संगतं) संगत (सूनृताम्) मीठी और सच्ची वाणी (च) और (इष्टापूर्ते) इष्ट और पूर्त (पुत्रपशून् च) पुत्र और पशु (सर्वान्) सब (एतद्) इनको (वृङ्क्ते) नष्ट करता है (अल्पमेधसः) मंदबुद्धि (पुरुषस्य) पुरुष का (यस्य) जिसके (अनश्नन्) बिना खाये (वसति) रहता है (ब्राह्मणः) ब्राह्मण अतिथि (गृहे) घर में ॥८॥

व्याख्या—जिस मन्दमति मूर्ख पुरुष के घर में अतिथि आता है, और अल्पबुद्धि गृहस्थ उसका जल-भोजनादि से सत्कार नहीं करता, तो यह अग्निरूप अतिथि उसके आशा, प्रतीक्षा, सगत, सूनृता, इष्ट, पर्त्त, पुत्र, पशु आदि सब को नष्ट कर देता है ॥८॥*

8. Yama thought that man in whose house, a guest is forced to fast, practically looses all his hopes and expectations, his gains from solemn contacts, the fruit of true and sweet words ever spoken by him, his sacrifices and the fruits of charity, his progeny as well as his cattlewealth.

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे-
ऽनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः ।

*आशा—अभीष्ट विषय की प्राप्ति की उत्कण्ठा आशा है। प्रतीक्षा—अज्ञात वस्तु की प्राप्ति की (उड़ीक) प्रतीक्षा है। संगतं—सत्संगति से होनेवाला फल संगत है। (इष्टपूर्त) वैदिक यज्ञकर्म इष्ट है, कुँआ, नलका, बाग, बगीचा, धर्मशाला, विद्यालय आदि का बनवाना पूर्त कहलाता है।

नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति मे अस्तु,
तस्मात् प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥९॥

पदार्थ—(तिस्रः) तीन (रात्रीः) रात्रियें (यत्) जो (अवात्सीः) रहे हो (गृहे) घर में (मे) मेरे (अनश्नन) बिना खाये (ब्रह्मन् अतिथिः) हे ब्राह्मण अतिथि ! (नमस्यः) नमस्करणीय हो। (नमः ते) तेरे लिये नमस्ते (अस्तु) हो (ब्रह्मन्) हे ब्रह्मन् ! (स्वस्ति) कल्याण (मे) मेरा (अस्तु) हो। (तस्मात्) इसलिये (प्रति) एक-एक [रात्रि के प्रति] (त्रीन्) तीन (वरान्) वरों को (वृण्णीव) वर लो ॥९॥

व्याख्या—यम के घर में उसकी अनुपस्थिति में, बिना कुछ खाये-पीए नचिकेता तीन रात्रि पर्यन्त रहा। इस बात को अनुभव करके स्वयं यम ने नचिकेता को कहा; हे ब्रह्मन् ! तुम तीन रात्रि बिना भोजन मेरे घर में रहे हो। तुम नमस्कार करने योग्य हो। मैं तुझे नमस्ते कहता हूं, और अपना कल्याण चाहता हूं। उन तीन रात्रियों के प्रतीकार में, मैं तुम्हें तीन वर देता हूं। वे तुम मांग लो ॥९॥

9. (So Yama said to Nachiketa) 'Oh my learned guest ! you have passed three nights at my house, without food, I offer you my salutation. Bless me and to that end, choose any three boons in lieu thereof'.

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्,
वीतमन्युर्गौतमो माभिमृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत् प्रतीतः,
एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥१०॥

पदार्थ—(शान्तसंकल्पः) शान्तसंकल्पवाला (सुमनः) प्रसन्नमनवाला (यथा) जैसे (स्यात्) हो (वीतमन्युः) क्रोधरहित (गौतमः) गौतम (मा) मेरे (अभि) प्रति (मृत्यो) हे यम ! (त्वत्) तुझसे (प्रसृष्टं) भेजे हुए (मा) मुझसे (अभिवदेत्) बातचीत करे, (प्रतीतः) [क्रोधरहित] लब्ध-स्मृति होकर (एतत्) यह (त्रयाणां) तीनों में (प्रथमं वरं) पहला वर (वृणे) मांगता हूं ॥१०॥

व्याख्या—यम ने नचिकेता को जब तीन वर मांगने की आज्ञा दी; तो उन तीनों में से पहला वर नचिकेता ने यह मांगा, कि हे मृत्यो ! जब मैं आप से अनुज्ञा दिया हुआ अपने घर में जाऊं, तो मेरा पिता गौतम, शांतसंकल्प, प्रसन्नचित्त तथा क्रोधरहित होकर मुझ से बातचीत करे। क्रोध के आवेश में वाजश्रवस ने पुत्र को मृत्यु के पास भेजा था। इसलिए नचिकेता ने यही पहले वर मांगा कि मेरे पिता का क्रोध शांत हो और प्रेमपूर्वक मुझ से बातचीत करे ॥१०॥

10. Nachiketa says—Oh Yama !(—Lord of death)—Pray, let this be my first boon from among the three, 'when I henceforth return home, allowed by you—my father, on recognising me,receives me and talks to me with his mind fully appeased and tranquilised.

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीतः,
औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः ।
सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्यु-
स्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥११॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (पुरस्तात्) पहले था (भविता) होगा (प्रतीतः) प्रीतिवाला (औद्दालकिः आरुणिः) औद्दालकि आरुणि वाजश्रवस (मत्)

मुझसे (प्रसृष्टः) अनुज्ञा दिया हुआ ।(सुखं रात्रीः) सुख की रात्रियें (शयिता) सोवेगा (वीतमन्युः) क्रोधरहित होगा (त्वां) तुझको (ददृशिवान्) देखकर (मृत्युमुखात्) मृत्यु के मुख से (प्रमुक्तम्) छूटे हुए [तुझको] ॥११॥

व्याख्या—यम ने नचिकेता से कहा कि; हे नचिकेता ! औद्दालकि आरुणि तेरा पिता, तुझसे वैसा ही व्यवहार करेगा जैसे पहले करता था। तुझे मुझ मृत्यु से छूटा देखकर, क्रोधरहित होगा और सुख की रात्रियें भविष्य में सोवेगा ॥११॥

11. Nachiketa ! Rest assured, said Yama, when released by me, and on your going, your father Audaliki Aruni (Gautama) on seeing you, return from the jaws of death, will have sound sleep throughout the nights—his anger fully removed. He shall be kind and gracious to you as ever before.

स्वर्गे लोके न भयं किञ्चनास्ति,
न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे,
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१२॥

पदार्थ—(स्वर्गे लोके) स्वर्गलोक में (न भयं) नहीं भय (किञ्चन) कुछ (अस्ति) है। (न तत्र) नहीं वहां (त्वं) तू हे मृत्यो ! (न जरया) नहीं बुढ़ापे से (बिभेति) डरता है ।(उभे) दोनों (अशनाया) भूख (पिपासा) प्यास को (तीर्त्वा) तर कर (शोकातिगः) शोक का अतिक्रमण करके (मोदते) प्रसन्न होता है (स्वर्गलोके) स्वर्गलोक में ॥१२॥

व्याख्या—स्वर्ग-साधन यज्ञ का ज्ञान प्राप्त करने के लिये, दूसरे

वर के रूप में वर मांगा है कि; हे यम ! वह स्वर्गलोक जिसमें भय, मृत्यु. बुढ़ापा, भूख, प्यास और शोक नहीं है; जहां जाकर जीव प्रसन्न होता है; उस स्वर्गलोक के साधनरूप यज्ञ को मैं जानना चाहता हूं ॥१२॥

12. Then Nachiketa says—'It is said that heavenly abode is free from all fears, even you death, are not there nor is there the fear of old age and one crosses the pains of hunger and thirst and is also free from grief and sorrow passing his iife joyfully in that heavenly abode.

स त्वमग्निं स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो,
प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम् ।
स्वर्गलोका अमृतत्त्वं भजन्त,
एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥१३॥

पदार्थ – (सः त्वं) वह तुम (अग्निम् स्वर्ग्यम) स्वर्गसाधन अग्नि [यज्ञ] को (अध्येषि) जानते हो। (मृत्यो) हे मृत्यो ! (प्रब्रूहि) कहो (त्वं) तू (श्रद्दधानाय) श्रद्धालु (मह्यम्) मुझको (स्वर्गलोकाः) स्वर्गलोक में रहनेवाले (अमृतत्त्वं) अमरता को (भजन्ते) प्राप्त करते हैं। (एतद्) यह (द्वितीयेन) दूसरे (वरेण) वर से (वृणे) मांगता हूं ॥१३॥

व्याख्या—नचिकेता ने यम को कहा कि; हे भगवन् ! तुम स्वर्ग को ले जानेवाले यज्ञ-ज्ञान को भली प्रकार जानते हो। स्वर्गलोक की कामनावाले यजमान, उस यज्ञ से अमरता को प्राप्त करते हैं। अतः दूसरे वर के रूप में, मुझ श्रद्धालु को यज्ञ-विद्या का उपदेश कीजिये ॥१३॥

13. Oh Yama ! surely you must be aware of that

Agni (sacrifice) which leads to that abode. Pray, tell me. I have come to you with a firm faith, because by that means, one goes to that heavenly abode and attains immortality. So to say, this is the 2nd boon, I ask for.

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध,
स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन् ।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां,
विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम् ॥१४॥

पदार्थ—(ते प्रब्रवीमि) तुझे कहता हूं (तत् उ) उसे (मे) मुझसे (निबोध) जान (स्वर्ग्यमग्निं) स्वर्गसाधन अग्नि को (नचिकेतः) हे नचिकेता! (प्रजानन्) जानता हुआ मैं (अनन्तलोक आप्तिम्) जो यज्ञ, अनन्तलोक [स्वर्गलोक] की आप्ति=प्राप्ति का साधन है (अथ) और (प्रतिष्ठां) [स्वर्ग का] आधार है (विद्धि) जानो (त्वं) तू (एतं) इस अग्नि को (निहितं) छिपी हुई है (गुहायाम्) [बुद्धि की] गुफा में ॥१४॥

व्याख्या—यम ने नचिकेता को कहा कि हे नचिकेता! स्वर्ग के साधनरूप तथा आधाररूप उस अग्निविद्या को, जो बुद्धि की गुफा में स्थित है, उसे मैं भली-भांति जानता हूं, तुम मुझसे समझो ॥१४॥

14. Yama says—Hearken from me, oh Nachiketa and understand from me, for I do know ihat (swargiayagya) sacrifice, the means to reach that heavenly abode, which at the same time, forms its base. That knowledge of sacrifice is hidden within the cave of.

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै,
या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्त-
मथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥१५।

पदार्थ—(लोकादि) स्वर्गलोक के आदि साधनभूत (अग्निम्) यज्ञ को (तम्) उसको (उवाच) बोला (तस्मै) उसे [बताया] (याः) जो (इष्टकाः) ईंटें (यावतीः) जितनी (यथा) जैसी [यज्ञकुण्ड में चयन की जाती हैं] (सः) वह नचिकेता (अपि) भी (तत्) उस विद्या को (प्रत्यवदत्) बोला (यथा उक्तम्) जैसे यम ने बताई थी (अथ) इसके अनन्तर (अस्य) इस पर (तुष्टः) संतुष्ट हुआ (मृत्युः) यम (पुनः) फिर (एव) ही (आह) बोला ॥१५॥

व्याख्या—यम ने स्वर्गलोक की साधन-भूत अग्निविद्या को नचिकेता को बता दिया, और उसे यज्ञकुण्डों में कितनी कहां, कैसे ईंटों का चयन करना चाहिये, यह विधि भी बता दी। नचिकेता ने अपनी प्रखर बुद्धि का परिचय दिया, और जो-जो कुछ जैसे यम ने बताया था; उसे वैसे ही दोहरा दिया। उसकी इस योग्यता से यम बहुत सन्तुष्ट हुआ ॥१५॥

15. Yama then expostulated before Nachiketa the basic step for performing that Yagna, that leads to the heavenly abode-telling even the number of bricks required to build up that alter for sacrifice. Nachiketa having understood the same, repeated it, which pleased Yama, who then continued to say—

तमब्रवीत् प्रीयमाणो महात्मा,
वरं तवेहाद्य ददामि भूयः ।
तवैव नाम्ना भविताऽयमग्निः,
सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥१६॥

पदार्थ—(तम्) उस नचिकेता को (अब्रवीत्) बोला (प्रीयमाणः) प्रसन्न हुआ (महात्मा) महात्मा [वैवस्वत यम] (वरं) वर (तव) तुझे (इह) यहां (अद्य) आज (ददामि) देता हूं (भूयः) फिर।(तव एव) तेरे ही (नाम्ना) नाम से (भविता) होगी (अयं) यह (अग्निः) अग्नि। (सृंकां) मार्ग (च) और (इमां) इस (अनेकरूपां) अनेक रूप के फलोंवाले को (गृहाण) स्वीकार कर ॥१६॥

व्याख्या--यम नचिकेता की योग्यता से प्रसन्न हुआ, और बिना मांगे ही नचिकेता को एक और चतुर्थ वर दे दिया। वह वर यह था कि, हे नचिकेता ! भविष्य में यह अग्नि तेरे ही नाम से प्रसिद्ध होगी। कर्मकाण्ड के अनेक रूपों के फलोंवाले मार्ग को तू स्वीकार कर ॥१६॥

16. Yama—the great soul, being gratified, said, there is another boon vouchsafed to you that this path of Yagna with its various forms will hereforth, be named after you—accept it such.

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं,
त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मजज्ञं देवमीड्यं विदित्वा,
निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥१७॥

पदार्थ—(त्रिणाचिकेतः) अग्नि का जिसने तीन बार चयन किया है (त्रिभिः) माता, पिता, आचार्य तीनों के साथ (एत्य) पहुंच करके (सन्धिं) सम्बन्ध को (त्रिकर्मकृत्) यज्ञ, तप और दान ये तीन कर्म जिसने किये हैं, वह (तरति) तर जाता है (जन्म-मृत्यु) जन्म और मृत्यु को। (ब्रह्मजज्ञं) ब्रह्म=वेद से जो जाना जाता है, वह ब्रह्मजज्ञ ईश्वर (देवं) देव (ईड्यं) पूजनीय को (विदित्वा) जानकर (निचाय्य) अनुभव कर (इमां) इस (शान्ति अत्यन्तम्) परम शान्ति को (एति) प्राप्त करता है ॥१७॥

व्याख्या—जिसने तीन बार नाचिकेत यज्ञ किया है; जिसे माता पिता तथा आचार्य से आशीर्वाद प्राप्त हुआ है; जिसने तप, यज्ञ और दान किया है, वह पुरुष जन्म और मृत्यु के बन्धनों को तोड़ देता है। वेद-प्रतिपादित सर्वज्ञ, पूजनीय, परमात्मदेव को जान करके वह पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है ॥१७॥

17. Whosoever performs the three kinds of Nachiketa Yagna, secures the blessings of the three—Mother, Father and Preceptor—and who performs 3 kinds of actions i.e. sacrifice charity and austerity—crosses over the cycle of births and deaths, and on knowing the Adorable, worshipful Supreme Being, and realising Him, attains bliss.

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा,
य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम् ।
स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य,
शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥१८॥

पदार्थ—(त्रिणाचिकेतः) तीन बार जिसने नाचिकेत यज्ञ किया है (त्रयं) इन तीनों अर्थात् जैसी जितनी और जिस प्रकार की इष्टिकाओं=ईंटों

से यज्ञकुण्ड में चयन किया जाता है। इन तीनों चयनों (एतद्) इन्हें (विदित्वा) जानकर (यः) जो (एवं) इस प्रकार (विद्वान्) विद्वान् (चिनुते) चयन करता है (नाचिकेतम्) नाचिकेत यज्ञ को (सः) वह विद्वान् (मृत्युपाशान्) मृत्यु की फांसियों को (पुरतः) शरीर के पात [देहान्त] के पहले ही (प्रणोद्य) काटकर (शोकातिगः) शोक का अतिक्रमण कर (मोदते) प्रसन्न होता है (स्वर्गलोके) स्वर्गलोक में ॥१८॥

व्याख्या—जो विद्वान् नाचिकेत यज्ञ की विधि को जानकर, इस यज्ञ का चयन करता है, वह मृत्यु आने से पहले ही अर्थात् जीवनकाल में ही मृत्यु के पाशों को तोड़ देता है। वह शोकरहित होकर स्वर्ग-लोक में आनन्दित होता है ॥१८॥

18. Nachiketa. thou hast understood all the three mentioned above, and knowing them hast acted accordingly. He has verily cut asunder the chain of births and deaths in this very life, and has attained the abode of bliss—leaving behind all sorrow and grief.

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो,
यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण ।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनास-
स्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥१९॥

पदार्थ—(एषः) यह (ते) तुझे कही है (अग्निः) अग्नि (नचिकेतः) हे नचिकेता! (स्वर्ग्यः) जो स्वर्ग का साधन है (यम्) जिसे (अवृणीथाः) वरा था (द्वितीयेन) दूसरे (वरेण) वर से। (एतं) इस (अग्निं) अग्नि को (तवैव) तेरे ही नाम से (प्रवक्ष्यन्ति) कहेंगे (जनासः) लोग (तृतीयं) तीसरा (वरं) वर (नचिकेतः) हे नचि-केता (वृणीष्व) मांगो ॥१९॥

व्याख्या यम ने नचिकेता को कहा कि जिस स्वर्ग-साधनभूत अग्नि के वर को तूने मुझसे मांगा था, वह तुझे बता दिया है। भविष्य में लोक इस अग्नि को तेरे ही 'नाचिकेताग्नि' नाम से कहा करेंगे। अब तुम तीसरा वर मांगो ॥१९॥

19. Nachiketa ! this is precisely that are (sacrifice), which leads to heavenly abode and which you asked for, as your second boon. Hereforth, the sacrifice will be named after you. Now Nachiketa, ask for the third boon.

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्ये-
ऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके ।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं,
वराणामेष वरस्तृतीयः ॥२०॥

पदार्थ—(या) जो (इयं) यह (प्रेते) मृत (मनुष्ये) मनुष्य के मरने में (विचिकित्सा) संशय है आत्मा रहता है (इति) ऐसा (एके) कई [कहते हैं] (न अयं अस्ति) नहीं यह आत्मा रहता (इति च एके) ऐसा कई कहते हैं। (एतत्) इसको (विद्यां) मैं जान सकूं (अनुशिष्टः) शिक्षा दिया हुआ (त्वया) तुझसे (अहं) मैं (वराणां) वरों में (एषः) यह (वरः) वर (तृतीयः) तीसरा ॥२०॥

व्याख्या—हे वैवस्वत ! मनुष्यों के मरने पर संशय रहता है, कई कहते हैं कि मरने के अनन्तर आत्मा की सत्ता रहती है, कई कहते हैं नहीं रहती। ऐसा संशय संसार में विद्यमान है। आप कृपा करके इस रहस्य को मुझे बताएं, क्या जीवात्मा मरने के अनन्तर रहता है या नहीं ? यह मेरी जिज्ञासा है, और यही मैं तीसरा वर मांगता हूं ॥२०॥

20. That the human soul exists after death in the view of some, while some other say, it does not, Nachiketa begs of you, yama to let him understand the truth thereof. This is the fhird boon, I ask for.

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा,
न हि सुज्ञेयमणुरेष धर्मः ।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व,
मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥२१॥

पदार्थ—(देवैः अपि) विद्वानों ने भी (अत्र) इस विषय में (विचिकित्सितं) सन्देह किया है (पुरा) पहले (नहि) नहीं (सुज्ञेयं) जानने में सुगम (अणुः) सूक्ष्म) है (एषः) यह (धर्मः) विषय । (अयं) और (वरं) वर को (नचिकेतः) हे नचिकेता ! (वृणीष्व) मांग (मा) मत (मा) मुझे (उपरोत्सीः) विवश कर (अतिसृज) छोड़ दो (मा) मेरे प्रति (एनम्) इस वर को ॥२१॥

व्याख्या—यम ने नचिकेता को कहा, कि पहले समय में भी विद्वानों ने मरणानन्तर आत्मा के सम्बन्ध में सन्देह किया है। हे नचिकेता ! यह विषय बड़ा सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है, इसलिए यह वर मांगने में मुझे विवश न करो। यह वर मुझे छोड़ दो। हे नचिकेता! और कोई वर इसके अतिरिक्त मांग लो ॥२१॥

21. Yama said in reply—Even in olden times learned men had doubts on this subject. This subject is very difficult to understand, and it is subtle, Nachiketa ! ask for some other boon. do not press me. leave it.

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल,
त्वञ्च मृत्यो यन्न सुज्ञेयमात्थ ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो,
नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥२२॥

पदार्थ— (देवैः) विद्वानों ने (अत्र अपि) इस विषय पर भी (विचिकित्सितं) संशय किया है (किल) यदि (त्वं च मृत्यो) और तुम हे मृत्यो ! (यत्) जिस विषय को (न सुज्ञेयं) सुगम नहीं है (आत्थ) कहते हो । (वक्ता) कहनेवाला (च) और (अस्य) इसके सम्बन्ध में (त्वादृग्) तेरे जैसा (अन्यः) और (न) नहीं (लभ्यः) मिल सकता (न) नहीं (अन्यः) और (वरः) वर (तुल्यः) तुल्य (एतस्य) इसके (कश्चित्) कोई भी ॥२२॥

व्याख्या—यम का उत्तर सुनकर नचिकेता ने कहा—हे मृत्यो ! आपने यह कहा है कि इस मृत्यु के सम्बन्ध में देवों ने भी सन्देह किया है, और आप यह भी कहते हैं कि, यह विषय सुगम नहीं । तब तो यह वर अवश्य मैं आपसे मांगूंगा; क्योंकि इस प्रकार के गूढ़ विषय को समझानेवाला विरला ही होता है । अब मेरा सौभाग्य है कि, आप जैसे तत्त्ववेत्ता मुझे मिले हैं । इसलिए भगवन् ! मैं और वर नहीं मांगूंगा । इसी तत्त्व को जानना चाहता हूं ॥२२॥

22. Nachiketa replies—The fact that Learned men of ancient time had doubts on the subject and that it is also difficult to understand, according to you, then who else except one like you, can throw light on this subject. I cannot, therefore, think of any other boon.

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व,
बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान् ।

भूमेर्महदायतनं वृणीष्व
स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥२३॥

पदार्थ—(शतायुषः) सौ वर्ष आयुवाले (पुत्रपौत्रान्) पुत्र और पौत्रों को (वृणीष्व) वर ले (बहून्) बहुत (पशून्) पशुओं को (हस्ति) हाथी (हिरण्यं) सोना (अश्वान्) घोड़ों को। (भूमेः) भूमि के (महत) बड़े (आयतनं) भाग को (वृणीष्व) वर ले (स्वयं च) और स्वयं भी (जीव) जीवो (शरदः) वर्ष (यावत्) जितने (इच्छसि) चाहते हो ॥२३॥

व्याख्या—नचिकेता के दृढ़ विचार सुनकर, प्रलोभनों द्वारा यम उसकी परीक्षा करने के लिये उसे और प्रलोभन देता है। हे नचिकेता! तुम सौ-सौ वर्ष की आयुवाले पुत्र और पौत्र मांग लो। हाथी, घोड़े आदि अनेक पशु, स्वर्ण और भूमि का बड़ा विशाल भाग मुझसे मांग लो। जितने वर्ष तुम स्वयं जीना चाहते हो, वह आयु भी मुझसे मांग लो ॥२३॥

23. Yama said, Nachiketa ! ask for children and grandchildren, who May live for hundred yesrs, ask for animals like elephants, horses etc, ask for gold ask for huge tracts ot land, Ask for long life for yourself—howsoever long.

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं,
वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि,
कामानां त्वा कामभाजं करोमि ॥२४॥

पदार्थ— (एतत्) इसके (तुल्यं) तुल्य (यदि मन्यसे) यदि मानते हो तो (वरं वृणीष्व) वर मांग लो (वित्तं) धन (चिरजीविकाम्) चिर-

स्थायी जीवन ।(महाभूमौ) विस्तृत भूमि पर (नचिकेतः) हे नचिकेता ! (त्वं) तू स्वामी (एधि) हो (कामानां) कामनाओं का (त्वा) तुझे (कामभाजं) कामनाओं का भगनेवाला (करोमि) करता हूं ।।२४।।

व्याख्या—यम ने कहा कि हे नचिकेता ! इस मृत्यु-सम्बन्धी वर को छोड़ दे। इसके तुल्य यदि और कोई वर समझते हो तो मुझसे मांग लो। धन और चिरस्थायी जीविका मांग लो। इस भूमि पर तुम महान् से महान् भूमिभाग के स्वामी बनो। जितनी भी संसार में कामनाएं हैं, उन सब का भोक्ता मैं तुम्हें बना सकता हूं, अतः इस वर को छोड़कर और वर मांग लो ।।२४।।

24. Ask for such a boon, if thou deemest it, equal to the one you desired, choose wealth and long life, be a King of vast kingdom—I shall make thee, enjoy whatsoever thou dəsirest.

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके,
सर्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या,
न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।
आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व,
नचिकेतो मरणं माऽनुप्राक्षीः ।।२५।

पदार्थ—(ये ये) जो जो (कामाः) कामनाएं (दुर्लभाः) दुर्लभ हैं (मर्त्यलोके) संसार में (सर्वान् कामान्) सब कामनाओं को (छन्दतः) स्वतंत्रता से (प्रार्थयस्व) मांग लो। (इमाः) ये (रामाः) सुन्दर स्त्रियां (सरथाः) रथों के साथ (सतूर्याः) बाजों के साथ (नहि ईदृशाः) नहीं

ऐसी सुन्दर रमणियें (लम्भनीयाः) प्राप्त होतीं (मनुष्यैः) मनुष्यों को, (आभिः) इन (मत्) मुझसे (प्रत्ताभिः) दी हुई रमणियों से (परिचारयस्व) सेवा करवाओ। (नचिकेतः) हे नचिकेता! (मरणं) मरने के सम्बन्ध में (मा) मत (अनुप्राक्षीः) पूछो ॥२५॥

व्याख्या—अधिक प्रलोभन देते हुए यम ने नचिकेता को कहा कि—जो भी कामनायें इस मर्त्यलोक में दुर्लभ हैं, उन सब कामनाओं को स्वतन्त्रता से मांग लो। सांसारिक आमोद-प्रमोद के लिये सुन्दर रमणियें और उनके साथ आनन्द देनेवाले रथादि वाहन तथा गाने बजाने के साधन बाजे आदि तुझे देता हूं। इस प्रकार की सुन्दर रमणियें, जो इस मर्त्यलोक में नहीं मिलतीं, उनसे तुम अपनी सेवा करवाओ, और सांसारिक सुख का आनन्द लो, परन्तु हे नचिकेता! मरने के विषय के प्रश्न को मत पूछो ॥२५॥

25. Ah ! the desires that are difficult to win in this world of mortals, demand more, at thy pleasure, these delectable women with chariots and bugles, whose like is not available to mortals, these I can give thee to serve as thy maidens, oh Nachiketa ! question me not about death.

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्,
सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव,
तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥२६॥

पदार्थ—(श्वोभावाः) कल तक रहनेवाले हैं (मर्त्यस्य) मनुष्य के (यत्) जो (अन्तक) हे यम! (एतत्) ये [भोग] (सर्वं) सब (इन्द्रियाणां) इन्द्रियों के (जरयन्ति) जीर्ण कर देते हैं (तेजः) तेज को। (अपि) भी (सर्वं) सब

(जीवितं) जीवन (अल्पं) थोड़ा (एव) ही है, (तव) तेरे (एव) ही हों (वाहाः) रथ (तव) तेरे ही हों (नृत्यगीते) नाच और गीत ॥२६॥

व्याख्या—यम के प्रलोभनों को सुनकर नचिकेता ने कहा कि—हे सब का अन्त करनेवाले यमराज ! ये पदार्थ जो वर के लिए आपने मुझे कहे हैं, सब कल तक रहनेवाले हैं, और अस्थिर हैं। ये भोग मनुष्य की सब इन्द्रियों के तेज को क्षीण कर देते हैं। आपने दीर्घ जीवन के लिये मुझे कहा है, वह मैं नहीं चाहता। क्योंकि चाहे कितना ही दीर्घ जीवन हो, अन्त में वह परिमित ही है, और अन्त में मनुष्य मृत्यु के मुख में चला ही जाता है। ये रथ आदि वाहन और नृत्य गीत करनेवाली रमणियें तेरे ही पास रहें, मुझे इनकी आवश्यकता नहीं ॥२६॥

26. Nachiketa replies—

Ah ! these are perishable objects —these enjoyments wear away the senses and their powers. Verily the lifc itself is fleeting, Keep all these choriots and dancing and singing to yourself.

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो,
लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा ।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं
वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥२७॥

पदार्थ—(न) नहीं (वित्तेन) धन से (तर्पणीयः) तृप्त होता (मनुष्यः) मनुष्य, (लप्स्यामहे) प्राप्त कर लेंगे (वित्तं) धन को (अद्राक्ष्म) देख लिया है (चेत्) यदि (त्वा) तुझे। (जीविष्यामः) जी लेंगे (यावत्) जब तक (ईशिष्यसि) स्वामी बने रहोगे (त्वं) तुम, (वरः) वर (तु) तो (मे) मुझे (वरणीयः) वरणा है (स) वह (एव) ही ॥२७॥

व्याख्या—हे यम ! भूमि और स्वर्णादि का जो प्रलोभन आपने मुझे दिया है, यह भी मुझे स्वीकार नहीं। क्योंकि धन से तो मनुष्य की कभी तृप्ति होती ही नहीं। मैंने आपके दर्शन कर लिए हैं, मुझे धन भी अपने आप मिल जावेगा। मुझे बहुत दीर्घ जीवन की भी चिन्ता नहीं, जब तक आप ईशन करेंगे, तब तक ही जी लूंगा। इसलिये बार-बार प्रलोभनों को देकर मुझे वास्तविक वर से दूर न हटाइये। मैं तो वही वर मांगूंगा, जो मैंने आपसे मांगा है ॥२७॥

27. Man is never satisfied with riches, These riches are there for my asking from thee, when I beseach you, and I can live so long as thou liKest—but I choose this boon and no other.

अजीर्यताममृतानामुपेत्य,
जीर्यन्मर्त्यः क्वधस्थः प्रजानन् ।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदा-
नतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥२८॥

पदार्थ—(अजीर्यतां) अजर (अमृतानां) अमर देवों के (उपेत्य) पास पहुंचकर (जीर्यन्) जराग्रस्त (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (कु+अधस्थः) नीचे भूमि पर रहनेवाला (प्रजानन्) जानता हुआ (अभिध्यायन्) विचार करता हुआ (वर्ण) सुन्दर वर्ण (रति) स्त्री रमण से उत्पन्न (प्रमोदान्) सुखों को (अतिदीर्घे) अति लम्बे (जीविते) जीवन में (कः) कौन (रमेत) रमण करेगा ? [अर्थात् कोई नहीं] ॥२८॥

व्याख्या—हे यम ! आप जैसे अजर अमर देवों के पास पहुंच कर, मृत्यु और बुढ़ापे के मुख में पहुँचनेवाला पुरुष, रमणियों के सुन्दर वर्णों और रति भोग से उत्पन्न अस्थिर सुख और लम्बे जीवन में कौन रमण करेगा ? ॥२८॥

28. Having once contacted the ageless, deathless, one like yourself—who amongst the poor mortals, liable to old age, living on the earth, understanding and khowing of the unreality of these sensual enjoyments, would like to indulge in the pleasures of the flesh. for a long time ? (no one).

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो,
यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत् ।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो,
नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥२९॥

पदार्थ—(यस्मिन्) जिस (इदं) इस विषय में (विचिकित्सन्ति) संशय करते हैं (मृत्यो) हे यम ! (यत्) जो (साम्पराये) परलोक के विषय में (महति) महान् (ब्रूहि) कहिये (नः) हमें (तत्) वह । (यः) जो (अयं) यह (वरः) वर (गूढं) गूढ़ता में (अनुप्रविष्टः) पहुंचा हुआ है, (न) नहीं (अन्यं) और वर को (तस्मात्) उस से (नचिकेता) नचिकेता (वृणीते) मांगता ॥२९॥

व्याख्या—हे मृत्यो ! जिस महान् परलोक के विषय में पुरुष संशय करते हैं । कइयों का विचार है कि मरने के अनन्तर जीवात्मा रहता है; कई कहते हैं कि शरीरक्षय के साथ ही सब कुछ दग्ध हो जाता है, आत्मसत्ता नहीं रहती । इस गूढ़ विषय के सम्बन्ध में आप मुझे बताइये । क्योंकि यह विषय महान् है, इसे साधारण व्यक्ति नहीं जान सकता । आप कृपा करके इसी प्रश्न को बताइये, इससे दूसरा और कोई वर मुझे स्वीकार नहीं ॥२९॥

29. Because, there are doubts on the subject of life after death, oh Yama ! please reveal to me this deep and subrle secret. This is the only boon that Nachiketa desires to know, and no other.

अथ

द्वितीया वल्ली

अब परीक्षा में उत्तीर्ण हुए अधिकारी नचिकेता को यम आत्मविद्या का उपदेश देते हैं—

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेय-
स्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु,
भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥१॥

पदार्थ—(अन्यत्) और है (श्रेयः) श्रेय मार्ग (अन्यत् उत एव) और ही है (प्रेयः) प्रेय मार्ग, (ते उभे) वे दोनों मार्ग (नाना अर्थे) पृथक् उद्देश्यवाले (पुरुषं) पुरुष को (सिनीतः) बांधे हुए हैं। (तयोः) उन दोनों में से (श्रेयः) श्रेय मार्ग (आददानस्य) ग्रहण करनेवाले का (साधु) कल्याण (भवति) होता है। (हीयते) पिछड़ जाता है उद्देश से (यः उ) जो निश्चय से (प्रेयः) प्रेय मार्ग को (वृणीते) चुनता है ॥१॥

व्याख्या—नचिकेता को अपने संकल्प में दृढ़ देखकर अन्त में गुरु ने शिष्य को कहा कि—इस संसार में श्रेय और प्रेय दो ही मार्ग हैं, जो पुरुष की वृत्तियों को बांधे हुए हैं। इन दोनों मार्गों का परिणाम सर्वथा भिन्न-भिन्न है। जो महान् पुरुष श्रेय अर्थात् विद्या के मार्ग में प्रवृत्त होते हैं, वे जीवन के उद्देश में सफल होकर अपना कल्याण कर लेते हैं। जो लोग सांसारिक विषय-वासनाओं में लिप्त

होकर प्रेय मार्ग को अपनाते हैं, वे जीवन के वास्तविक उद्देश से पीछे रहकर, जन्म-मरण के चक्र में ही पड़े रहते हैं ॥१॥

SECTION 1

CHAPTER 2

Yama says:—

1. Blissful is one path, while pleasure-giving is the other, both lead the man diffrently, but both bind him. It is well of him if he takes the blissful path, the pleasureable leads him astray from the ideal.

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेत-
स्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते,
प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥२॥

पदार्थ—(श्रेयः च) श्रेय और (प्रेयः च) प्रेय (मनुष्यं) मनुष्य के पास (एतः) पहुंचते हैं, (तौ) उन दोनों को (सम्परीत्य) भली भांति विचार कर(विविनक्ति)पृथक् करता है(धीरः)धीर पुरुष।(श्रेयः हि)श्रेय मार्ग को (धीरः) धीर पुरुष(अभिप्रेयसः) प्रेय मार्ग की अपेक्षा(वृणीते) चुन लेता है। (प्रेयः) प्रेय मार्ग को (मन्दः) मन्द बुद्धि (योगक्षेमात्*) योग क्षेम के हेतु से (वृणीते)चुनता है ॥२॥

व्याख्या—मनुष्य के अन्तःकरण में श्रेय और प्रेय के विचार सदा ही उत्पन्न होते रहते हैं। कभी आत्मतत्त्व की जिज्ञासा उत्पन्न होती

*टिप्पणी – जो पदार्थ पास नहीं, उसे प्राप्त करने का नाम 'योग' है। जब पदार्थ प्राप्त हो गया है, तो उसकी रक्षा करनी 'क्षेम' है।

है, और कभी सांसारिक विषयों के उपभोग की लालसा उत्पन्न होती है। यह देवासुर संग्राम मन में सदा होता रहता है। कभी देव वृत्तियें जागती हैं, और कभी असुर वृत्तियें आक्रमण करती हैं। धीर पुरुष इन दोनों विचारों पर बहुत विचारता रहता है। अन्त में सांसारिक भोग को अस्थिर और विनश्वर समझ कर त्याग देता है। इसके विपरीत मन्दबुद्धि पुरुष इसी ससार को सब कुछ जानता हुआ, परलोक के प्रति कोई चिन्ता नहीं करता। वह संसार में ही योग और क्षेम अर्थात् सांसारिक भोगों की प्राप्ति और उनकी रक्षा को सब कुछ समझकर प्रेय मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है ॥२॥

2. Both the blissful and the pleasureable paths come to everyone, the wise one distinguishes one from the other, and selects the blissful as against the pleasureable, not led away by worldly desires and possessions.

स त्वं प्रियान्प्रियरूपांश्च कामा-
नभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ।
नैतां सृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो,
यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥३॥

पदार्थ— (सः) वह (त्वं) तूने (प्रियान्) प्रिय पुत्र पौत्र भूमि आदि (प्रियरूपान्) सुन्दर रूपवाली रमणियों (च कामान्) और भोगों को (अभिध्यायन्) चिन्तन करते हुए (नचिकेतः) हे नचिकेता! (अत्यस्राक्षीः) त्याग दिया है। (न) नहीं (एतां सृङ्कां) इस सांकल=बेड़ी (वित्तमयीं) धनवाली को (अवाप्तः) प्राप्त हुआ=फंसा है, (यस्यां) जिस सांकल में (मज्जन्ति) डूबते=फंसते हैं (बहवः) बहुत से (मनुष्याः) मनुष्य ॥३॥

व्याख्या—यमाचार्य ने नचिकेता को कहा कि—हे शिष्य!

धन,भूमि, रथ, सुन्दर स्त्री आदि भोगों की अस्थिरता को जान करके, उस प्रेय मार्ग को तूने त्याग दिया है। इस धन की मोहरूपी सांकल (=जंजीर) में तुम नही फंसे, जिसमें बहुत से मनुष्य फंस जाते हैं ।।३।।

3. Thou, Nachikəta : hast turned thy face from the pleasureable objects, of beauty and show, aftsr pondering over the two. Thou hast not enchained thyself to riches, wherein men generally entangle themselves and sink.

दूरमेते विपरीते विषूची,
अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये,
न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ।।४।।

पदार्थ—(दूरं) दूर हैं (एते) ये दोनों मार्ग (विपरीते) एक-दूसरे से विपरीत (विषूची) भिन्न-भिन्न फलवाले हैं (अविद्या) अविद्या=प्रेय (या च) और जो (विद्या) विद्या=श्रेय (इति) इस प्रकार (ज्ञाता) जाने गये हैं। (विद्याभीप्सिनं) विद्या अर्थात् श्रेय का अभिलाषी (नचिकेतसं) तुझ नचिकेता को (मन्ये) मैं जानता हूं; (न त्वा) नहीं तुझे (कामा: बहव:) बहुत सी कामनाओं ने (अलोलुपन्त) लुभाया ।।४।।

व्याख्या–हे नचिकेता! इस संसार में विद्या (=श्रेय) और अविद्या (=प्रेय) के नाम से दो मार्ग हैं। ये दोनों मार्ग एक-दूसरे से दूर ले जानेवाले, विरुद्ध फलवाले, और भिन्न-भिन्न गतिवाले हैं। हे नचिकेता ! मैं तुझको बहुत उच्चकोटि की अवस्थावाला मानता हूं, क्योंकि तूने अविद्या अर्थात् प्रेय को छोड़कर विद्या अर्थात् श्रेय

का आश्रय लिया है। तुझे सांसारिक भोग नहीं लुभा सके, जिनमें पुरुष डूबे रहते हैं ॥४॥

4. Far apart are these two paths, opposite in their results. They are known as Vidya & Avidya (blissful & pleasureable), I feel, thou seekest the blissfull one. No worldly attraction has had an appeal to thee.

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः,
स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा,
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥५॥

पदार्थ—(अविद्यायां) अविद्या = प्रेय के (अन्तरे) अन्दर (वर्तमानाः) रहनेवाले (स्वयं) अपने आप को (धीराः) धीर-आत्मज्ञानी (पण्डितं-मन्यमानाः) पण्डित मानते हुए (दन्द्रम्यमाणाः) कुटिल गतिवाले (परियन्ति) भटकते हैं (मूढाः) मूढ़ जन (अन्धेन) अन्धे से (एव) ही (नीयमानाः) ले जाये जाते हुए (यथा) जैसे (अन्धाः) अन्धे ॥५॥

व्याख्या - हे नचिकेता ! अविद्याग्रस्त मूढ़ जन, जो प्रेय मार्ग में फंसे हुए हैं, और अपने-आप को आत्मज्ञानी और पण्डित मानते हैं, वे वास्तविक तत्त्व को न जानते हुए, संसार में अनेक प्रकार के छल-कपट करते हुए, कुटिलरूप से अपने जीवन को व्यतीत करते हैं। वे स्वयं अज्ञान में फंसे हुए, संसार को स्वार्थ के लिये अध्यात्ममार्ग का उपदेश करते हैं। हे नचिकेता ! इस प्रकार संसार को धोखा देने-वाले मूढ़ जन, जरामरणादि संसार के दुःखों में भटकते रहते हैं। जिस प्रकार एक अन्धा दूसरे अन्धों को मार्ग दिखाने के लिये ले जाता हुआ स्वयं तो ठोकरें खाता ही है, पर जो उसके पीछे चलते हैं उन्हें भी भटकाता रहता है ॥५॥

5, Those who are wedded to the pleasureable, who think themselves wise and learned, are greatly bewildered and wander about stumbling, like the blind leading a blind.

न साम्परायः प्रतिभाति बालं,
प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी,
पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥६॥

पदार्थ—(न) नहीं (साम्परायः) परलोक (प्रतिभाति) भासता है (बालं) बालबुद्धि (प्रमाद्यन्तं) कल्याणाचरण में प्रमाद करनेवाले (वित्तमोहेन) धन के मोह से (मूढम्) मूढ़ हुए हुए को। (अयं) यह (लोकः) लोक है (नास्ति) नहीं (परः) परलोक (इति) ऐसे (मानी) मानने वाला (पुनः पुनः) बारम्बार (वशं) वश को (आपद्यते) प्राप्त होता है (मे) मेरे ॥६॥

व्याख्या—हे नचिकेता ! कल्याणाचरण में आलस्य करनेवाले, धन के मोह से मूढ़ पुरुष को परलोक नहीं सूझता। वह पुत्र, धन तथा अन्य भोग ऐश्वर्यों में इतना आसक्त होता है कि सांसारिक भोगों में लिप्त हुआ-हुआ यही अनुभव करता है कि यह प्रत्यक्ष लोक ही सब कुछ हैं परलोक नहीं। परन्तु हे नचिकेता ! ऐसा माननेवाला पुरुष जन्ममरणादि चक्र में पड़ा हुआ मुझ मृत्यु के वश में ही सदा रहता है। अर्थात् वह इस मृत्युरूप बन्धन से कभी भी छूट नहीं सकता ॥६॥

6. Men of little inteligence. blinded with the delusion of riches, have no eyes for the next life for them, this life is the only one, consequently they are whirled round and round in a death dance.

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः,
शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।

आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-
श्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥७॥

पदार्थ (श्रवणाय) सुनने के लिए (अपि) भी (बहुभिः) बहुतों को (यः जो आत्मा (न) नहीं (लभ्यः) प्राप्त होता, (शृण्वन्तः) सुनते हुए (अपि) भी (बहवः) बहुत पुरुष (यं) जिस आत्मा को (न) (विद्युः) नहीं जानते। (आश्चर्यः) आश्चर्यरूप है (वक्ता) बतानेवाला (कुशलः) कुशल पुरुष है (अस्य) इस आत्मा का (लब्धा) पानेवाला, (आश्चर्यः) आश्चर्यरूप है (ज्ञाता) जाननेवाला (कुशल+अनुशिष्टः) कुशल पुरुष से उपदेश दिया हुआ ॥७॥

व्याख्या—हे नचिकेता ! इस संसार में सैकड़ों पुरुष ऐसे अभागे होते हैं कि जिन्हें आत्मा के सम्बन्ध में सुनने का भी अवसर नहीं प्राप्त होता। वे ऐसे देश और वातावरण में उत्पन्न होते हैं कि उन दुर्भाग्यशील नरों के कान में सुनकर भी यह विषय समझ ही नहीं आता। हे नचिकेता ! इस आत्मा का बताने और पानेवाला कोई विरला ही होता है। सहस्रों में कोई एक भाग्यवान् होता है, जिसके आत्मिक संस्कार भी ऊंचे हों, और जिसे उपदेश देनेवाला कोई कुशल आचार्य भी मिल जावे ॥७॥

7. Very many people do not even get a chance to hear about the supreme reality, many who do get it, do not comprehend it. Wonderful is indeed fhe man who can tell of it, and intelligent is one who can realise it. wonderful is the knower, when taught by an expert preceptor.

न नरेणावरेण प्रोक्त एषः,
सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः ।

अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति,
अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥८॥

पदार्थ— (न) नहीं (अवरेण) साधारण (नरेण) पुरुष से (प्रोक्तः) उपदेश दिया हुआ (एषः) यह आत्मविषय (सुविज्ञेयः) अच्छी प्रकार जाना जाता (बहुधा) अनेक प्रकार से (चिन्त्यमानः) विचार किया गया भी। (अनन्यप्रोक्ते) आत्मदर्शी पुरुष के बताने योग्य (अत्र) इस विषय में (गतिः नास्ति) गति [=पहुंच] नहीं अवर अर्थात् साधारण पुरुष की। (अणीयान्) अति सूक्ष्म हैं (हि) निश्चय से (अतर्क्यं) तर्क का विषय नहीं (अणुः) सूक्ष्म (प्रमाणात्) प्रमाण से ॥८॥

व्याख्या—हे नचिकेता ! जिस पुरुष ने स्वयं आत्मा का अनुभव नहीं किया, वह पुरुष 'अवर' कहलाता है। उसके उपदेश देने पर भी यह आत्मा नहीं जाना जाता, चाहे उस पर कितना ही विचार किया जावे। इसे तो अनन्य* अर्थात् आत्मानुभव करनेवाला असाधारण पुरुष ही बता सकता है। उसके बिना इस विषय में किसी की भी गति (=पहुंच) नहीं। यह आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, और तर्क का विषय नहीं है ॥८॥

8. This supreme reality can never be well comprehended, if taught by a man of inferior intellect, though pondered over again and again. Unless instructed by an expert teacher, there is no other way to it. That reality is subtler than the subtlest, it is beyond argumentation.

नैषा तर्केण मतिरापनेया,
प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।

*टिप्पणी—अनन्य=स्वयं ही जिसने आत्मा को जाना है, उस असाधारण आत्मदर्शी व्यक्ति का नाम 'अनन्य' है।

यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि,
त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥९॥

पदार्थ—(न) नहीं (एषा) यह (मतिः) बुद्धि (तर्केण) तर्क से (आपनेया) प्राप्त होने योग्य, (अन्येन) दूसरे आत्मदर्शी द्वारा (एव) ही (प्रोक्ता) कही हुई (सुज्ञानाय) सम्यक् ज्ञान के लिए उपयोगिनी होती है (प्रेष्ठ) हे प्यारे! (यां) जिस (मतिं) बुद्धि को (त्वं) तू (आपः) प्राप्त हुआ है, (सत्यधृतिः) सच्चे धैर्यवाला (बत) अहो (असि) तू है। (त्वादृक्) तेरे जैसा (नः) हमें (भूयात्) प्राप्त हो, (नचिकेतः) हे नचिकेता! (प्रष्टा) प्रश्न पूछनेवाला ॥९॥

व्याख्या—हे नचिकेता! हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि तेरे जैसा जिज्ञासु उच्च अवस्था का अधिकारी हमें प्राप्त होता रहे। क्योंकि तेरे जैसा धैर्यवाला कोई विरला ही होता है। तू जिस ज्ञान की अवस्था को प्राप्त हुआ है, यह तर्क से ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं होती। हे प्रियतम! इस प्रकार की शुभ मति आत्मदर्शन के लिये सच्चे आत्मदर्शी से ही प्राप्त होती है ॥९॥

9. That knowledge can not be gained by mere argumentation, it becomes easy to comprehend it, indeed, when taught by a superior guru. Nachiketa! you have reached that stage and stood firm by it. May questioners be like you.

जानाम्यहं शेवधिरित्यनित्यं,
न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्नि-
रनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥१०॥

पदार्थ—(जानामि) जानता हूं (अहं) मैं (शेवधिः) धन आदि निधि (इति) ऐसा (अनित्यं) अनित्य हैं। (न हि) नहीं (अध्रुवैः) अनित्य पदार्थों से

(प्राप्यते) प्राप्त होता है (हि) निश्चय से (ध्रुवं) नित्य (तत्) वह आत्मा। (ततः) इसलिए (मया) मैंने (नाचिकेतः अग्निः) नाचिकेत यज्ञ (चितः) चयन किया है। फलेच्छा से रहित होकर (अनित्यैः) अनित्य द्रव्यों से (प्राप्तवान् अस्मि) प्राप्त हुआ हूं (नित्यम्) नित्य को ॥१०॥

व्याख्या—हे यमाचार्य ! यह मैं जानता हुं कि सांसारिक निधि अनित्य हैं, और उन अनित्य पदार्थों से वह ध्रुव आत्मा नहीं पाया जाता। इसलिए आप से बतलाए हुए नाचिकेत यज्ञ को मैंने चयन किया है। वह यज्ञ फलविशेष की कामना से मैंने नहीं किया, किन्तु निष्काम भाव से किया है। अतः इस अनित्य फलदायी यज्ञ से भी नित्य अटल ध्रुव को मैंने पा लिया है ॥१०॥

10. Nachiketa says:—

I know these treasures are intransient, that the eternal one is not known by the non-eternal, yet I have performed the Nachiketa Yagna, with transient objects and have attained the eternal.

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां,
क्रतोरनन्त्यमभयस्य पारम् ।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा,
धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥११॥

पदार्थ—(कामस्य) कामनाओं=भोगों की (आप्तिं) परिसमाप्ति अर्थात् पराकाष्ठा (जगतः) जगत् का (प्रतिष्ठां) आधार (क्रतोः) यज्ञ का (अनन्त्यम्) अनन्त काल तक मिलनेवाला फल (अभयस्य) निर्भयता की (पारम्) पराकाष्ठा। (स्तोम महत्) स्तुतियों से महिमावाला (उरुगायम्) बहुत प्रकार से जो कीर्तित किया गया है (प्रतिष्ठां) प्रतिष्ठा को (दृष्ट्वा) देखकर

(धृत्या) धैर्य्य से (धीरः नचिकेतः) धीर हे नचिकेता ! (अत्यस्राक्षीः) तूने त्याग दिया है ॥११॥

व्याख्या—हे नचिकेता ! तू धीर अर्थात् आत्मदर्शी है, तुमने संसार की आधारभूत लौकिक कामनाओं, यज्ञ का अनन्त फल, और उससे प्राप्त होनेवाली निर्भयता, सांसारिक प्रतिष्ठा, तथा लौकिक यश को बड़े धैर्य्य से त्याग दिया है ॥११॥

11. Yama says:—

Oh Nachiketa ! Thou being learned and wise, hast rightly and courageously rejected these things, after having realised their natures—i e., the fulfilment of worldly desires—which are the basis of the world, and the endless fruits of saerifices leading to complete fearlessness, also to great worldly praise, fame and honour.

संगति—नचिकेता ने तो केवल यमाचार्य से यह पूछा था कि—क्या मरने के पश्चात् मनुष्य का आत्मा रहता है वा नहीं। इसके समझाने से पूर्व ही आचार्य ने उसे विचार दिया कि—जिस आत्मा को तूने पूछा है, उससे भी बढ़कर एक और तत्त्व है, जिसे परमात्मा कहते हैं, जिस आनन्दस्वरूप मोदनीय को पाकर यह मनुष्य का आत्मा भी मोदते=आनन्दित हो जाता है।

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं,
गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं,
मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥१२॥

पदार्थ—(तं) उस आत्मा को (दुर्दर्शम्) जिसका दर्शन करना कठिन है (गूढम्) जो गूढ है (अनुप्रविष्टम्) सब स्थानों में पहुंचा हुआ है

(गुहाहितं) जो बुद्धि की गुफा में स्थित है (गह्वरेष्ठम्) दुर्गम स्थान में भी रहनेवाला (पुराणम्) सनातन (अध्यात्मयोगाधिगमेन) अध्यात्मयोग द्वारा (देवं) उस परमदेव परमात्मा को (मत्वा) जानकर (धीर:) धीर पुरुष (हर्षशोकौ) हर्ष और शोक को (जहाति) त्याग देता है ।।१२।।

व्याख्या—अध्यात्मयोग की प्राप्ति से ही वह परम देव जाना जाता है। उसे जानने का अन्य मार्ग नहीं। जो धीर पुरुष उसे जान जाता है, वह सदा के लिये हर्ष-शोक, दुःख-सुख से ऊपर उठ जाता है, और मुक्ति का अधिकारी हो जाता है। वह परमशक्ति भगवान् दुर्दर्शनीय है, उसे इन नेत्रों से देखा नहीं जाता। वह घट-घटवासी अत्यन्त गूढ़ और बुद्धि की गुफा में स्थिर है। वह सदा काल से चला आता है, और नित्य है ।।१२।।

12. The wise man, having realised Him cares not for worlbly joys and sorrows, Him who is unseen, hidden deep in all things—lodged in the cave of the heart—eternal and lord of the universe, known only through meditataion.

एतच्छ्रुत्वा संपरिगृह्य मर्त्यः,
प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य ।
स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा,
विवृतं सद्म नचिकेतसं मन्ये ।।१३।।

पदार्थ—(एतत्) इस आत्मतत्व को (श्रुत्वा) सुनकर (सम्परिगृह्य) भली प्रकार से ग्रहण कर (मर्त्यः) मनुष्य (प्रवृह्य) पृथक् करके [प्रकृति से] (धर्म्यम्) [सृष्टि-रचनादि] धर्मों से युक्त (एतम्) इसे (आप्य) प्राप्त करके (सः) वह पुरुष (मोदते) आनन्दित हो जाता है (मोदनीयम्)

आनन्दमय परमात्मा को (हि) निश्चय से (लब्ध्वा) पाकर (विवृतं सद्म) खुले घर (मुक्ति धामवाला) (नचिकेतसं) नचिकेता को (मन्ये) मैं मानता हूं ॥१३॥

व्याख्या—इस आत्मतत्त्व को सद्गुरु से सुनकर, और उसको भली-भांति ग्रहण करके, मनुष्य सांसारिक **पदार्थों** और प्रकृति से उस ब्रह्म को पृथक् अनुभव करके, सूक्ष्म तथा सृष्टिसर्जन आदि धर्मगुणों से युक्त, परमात्मतत्त्व को प्राप्त करके आनन्दित हो जाता है। वह प्रभु सुखस्वरूप है, और उसे पानेवाला भी परमानन्द का उपभोग करता है। यमाचार्य ने कहा—हे नचिकेता! मैं तुझे खुले घरवाला मानता हूं। तेरे लिये मुक्तिधाम, ब्रह्मभवन द्वार खुला हुआ है। क्योंकि, तू उच्च अवस्था में पहुंच गया है ॥१३॥

13, A mortal man having heard and grasped the reality, distinguishes the supreme self from matter,and thus having known the subtle, supreme delight in the All-delightful. Oh Nachiketa ! I deem that the door of salvation is now open to you.

संगति—यमाचार्य ने जब थोड़ासा स्वरूप उसे परम आत्मशक्ति का बताया,तो नचिकेता के मन में आत्मा मरने के पीछे रहता है वा नहीं, इससे भी बढ़कर उस परमात्मा को जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो गयी। इस पर वह आचार्य्य से कहता है—हे भगवन्!

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्माद-
न्यत्रास्मात् कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च,
यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥१४॥

पदार्थ—(अन्यत्र) भिन्न है (धर्मात्) धर्म से (अन्यत्र) भिन्न है (अधर्मात्) अधर्म से (अन्यत्र) पृथक् है (अस्मात्) इस (कृत) कार्य्य से (अन्यत्र) भिन्न है (अकृतात्) कारण से (अन्यत्र) भिन्न है (भूतात्) भूतकाल से (भव्यात् च) और भविष्य काल से (यत् तत्) जिस उस परमात्मतत्व को (पश्यसि) देखते हो हे गुरो! (तत्) वह (वद) कहिये ॥१४॥

व्याख्या—नचिकेता ने यमाचार्य को कहा कि—हे भगवन्! जो आत्मतत्त्व, धर्म और अधर्म से पृथक् है, जो कारण और कार्य रूप प्रपञ्च से पृथक् है, जो भूत और भविष्य काल से भी पृथक् इस प्रकार की उच्च परमात्मासत्ता को मुझे भी बताइये ॥१४॥

14. Thereupon Nachiketa says:—

That who is above virtue and sin, who is above cause and effect, who is above time, past and future and whom you know well, pray tell me of that.*

संगति—जब नचिकेता के मन में दोनों विलक्षण आत्मातत्त्वों को जानने को तीव्र उत्कण्ठा उत्पन्न हो गयी, तो आचार्य्य उसे आत्म-तत्त्व पाने का साधन बताते हैं—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति,
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति,
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥१५॥

पदार्थ—(सर्वे) सब (वेदाः) वेद (यत्) जिस (पदं) प्राप्य स्थान का (आमनन्ति) वर्णन करते है। (तपांसि सर्वाणि) सारे तप (यत्) जिसे

*When Nachiketa heard from his Guru mention of supreme soul, he wanted to know about that also.

(वदन्ति) बतलाते हैं (यत्) जिसकी (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य्य व्रत को (चरन्ति) आचरण करते हैं, (तत् पदं) उस प्राप्य स्थान को (ते) तुझे (संग्रहेण) संक्षेप से (ब्रवीमि) मैं बतलाता हूं (ओम्+इति+एतत्) ओम् है यह ॥१५॥

व्याख्या—नचिकेता ने आचार्य से कहा कि—परमात्मसत्ता मुझे बतलावें। उसकी इस जिज्ञासा पर यमाचार्य ने नचिकेता को कहा कि—पुत्र ! वह परमसत्ता ओम् है, जिसका वर्णन वेदादि शास्त्रों में किया गया है। जिस ओम् को जानने के लिये मुमुक्षुजन अनेक प्रकार की तपस्याओं को करते हैं, जिसको पाने के लिये यति लोग ब्रह्मचर्यव्रत पालन करते हैं ॥१५॥

15. Yama says:—

The one word whom all the Vedas proclaim, whom all the ascetics declare and to know whom, life of Brahmacharya is led—that one word in short, is 'OM' I tall you.*

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म,
एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा,
यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१६॥

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥१७॥

* This was introduced by Yama to tell the means of realising the two souls before telling the details of Supreme Soul.

पदार्थ—(एतत्) यह ओम् (हि एव) निश्चय से (अक्षरं) न नष्ट होनेवाला (ब्रह्म) है। (एतत्+हि+एव अक्षरं परं) यह अविनाशी ओम् ही उत्कृष्ट है। (एतत् + हि + अक्षरं) इस ओम् अक्षर को ही (ज्ञात्वा) जानकर (यः) जो (यत्) जिसको (इच्छति) इच्छा करता है (तस्य) उसकी (तत्) वह (पूर्ण हो जाती है) ॥१६॥

पदार्थ—(एतत्) यह ओम् (आलम्बनं) आश्रय है (श्रेष्ठं) उत्तम, (एतत् आलम्बनम्) यह आश्रय है (परं) उत्कृष्ट (एतत्) इस (आलम्बनम्) आश्रय को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्मलोक में (महीयते) महिमा-वाला होता है ॥१७॥

व्याख्या—इन दो मन्त्रों में ओम की महिमा का वर्णन किया गया है। ओम् का स्मरण, ध्यान, जप ही ब्रह्म का वास्तविक स्मरण है। यह ओम् का जप सब जपों में उत्कृष्ट है। यह ओम् जीवन-नौका को पार करने के लिये परम साधन है। जो इसके महत्त्व को जान जाता है, वह ब्रह्मलोक को पा लेता है। उसकी सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। ईश्वर के अन्य सब नाम गौण हैं, और ओम् नाम ही मुख्य है। मुमुक्षुओं को इसी का जप और ध्यान करना चाहिये॥१६—१७॥

16. This one word denotes Brahm—this word represents the superior-most—on knowing this, one fulfils all his desires, whatever one wishes, he gets.

17. This 'OM' is the best refuge. It is the strongest support. Knowing this support, one attains the heavenly abode.

संगति—(आत्मा का) साधन बतलाकर अब अध्यात्मविद्या का आरम्भ करते हुए पहले जीवात्मा का स्वरूप बतलाते हैं—

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥१८॥

पदार्थ—(न) नहीं (जायते) उत्पन्न होता (वा) और (म्रियते) मरता (विपश्चित्) ज्ञानस्वरूप आत्मा (न+अयं) न ही यह (कुतः चित्) किसी से (बभूव) उत्पन्न हुआ (कश्चित्) कोई (इस से नहीं उत्पन्न हुआ) (अजः) अजन्मा (नित्यः) नित्य (शाश्वतः) सदा रहने वाला (अयम्) यह (पुराणः) पुरातन है। (न हन्यते) नहीं नष्ट होता (हन्यमाने शरीरे) शरीर के नष्ट होने पर भी ॥१८॥

18. The soul is never born, nor does it ever die, It is not the effect of any cause, nor is it the cause of any effect. It is unborn, eternal, everlasting, this body perishes, while soul continues to live.*

संगति—मन्त्र १२, १३, १४ में जब ब्रह्म का संक्षिप्त स्वरूप आचार्य्य ने नचिकेता को बतलाया, तो उसके हृदय में अपने तीसरे वर की अपेक्षा भी परमात्मा को जानने की उत्कण्ठा तीव्र हो गयी। परन्तु आचार्य्य ने मन्त्र १८ और १९ द्वारा उसके तीसरे वर 'क्या मरने के पीछे आत्मा रहता है वा नहीं' का पहले उत्तर देना उचित समझा है।

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुम्,
हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो,
नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

---

*These two 18, 19 verses are in fact the answer to Nachiketa's question about the human soul.

पदार्थ—(हन्ता) मारनेवाला (चेत्) यदि (मन्यते) समझता है (हन्तुम्) मार दूंगा [इस आत्मा को] (हतः) मारे जानेवाला (चेत्) यदि (हतम्) मरा हुआ, (उभौ तौ) वे दोनों मारने और मारा जानेवाला (न विजानीतः) नहीं जानते (न अयं) न यह (हन्ति) मारता है (न हन्यते) न मारा जाता है ॥१९॥

व्याख्या—अध्यात्मविद्या का आरम्भ करते हुए यमाचार्य ने जीव और ईश्वर इन दोनों चित् शक्तियों का स्वरूप बतलाया है। ओम् का नाम साधन है, साध्य आत्मतत्त्व है। अतः साधन बताकर प्रथम जीव के स्वरूप का वर्णन इन दो मन्त्रों में बतलाया है। गुरु ने कहा कि—हे शिष्य! यह जीवात्मा भी विपश्चित् अर्थात् ज्ञानवान् होने से चेतन है। यह आत्मा न उत्पन्न होता है, न मरता है। मृत्यु और जन्म शरीर के धर्म हैं, आत्मा के नहीं। यह जीवात्मा किसी का कार्य नहीं, और न ही किसी का उपादान कारण है। स्वतन्त्र सत्ता है जो अजन्मा, नित्य सदा रहनेवाला, पुराकाल से चला आया है।* शरीर के हिंसित होने पर भी आत्मा मरता नहीं, वह अमर है। इस शरीर पर आघात करने से जब आत्मा देह से पृथक् हो जाता है, तो मारनेवाला समझता है कि मैंने उसे मार दिया और मरनेवाला समझता है कि मैं मरा। वास्तविकता यह नहीं है। शरीर के खण्डित कर देने पर भी, आत्म-तत्त्व इस पाञ्चभौतिक शरीर से पृथक् हो जाता है, नष्ट नहीं होता। वह नित्य और शाश्वत् है। इस तत्त्व को न समझ कर दोनों अर्थात् मारने और मरनेवाला अज्ञान में ही हैं ॥१९॥

---

*टिप्पणी—भगवद्गीता अध्याय २ में थोड़े से भेद से इन मंत्रों को श्लोक के रूप में उद्धृत किया गया है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

इस मंत्र में जीवात्मा का वर्णन है, परमात्मा का नहीं। इसके लिये ऊपर आये

19. If the slayer thinks that he slays, so If the slain thinks himself slain, both of them do not understand, he never slays, nor is slain.

संगति—मन्त्र १८ तथा १९ में संक्षेप से उसके तीसरे वर का उत्तर देकर, अब नचिकेता की तीव्र उत्कण्ठा होने पर कि परम आत्मतत्त्व क्या है ? उसका स्वरूप यम ने बतलाया है—

अणोरणीयान् महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको,
धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥२०॥

पदार्थ—(अणोः) सूक्ष्म से (अणीयान्) सूक्ष्म (महतः) महान् से (महीयान्) महान् (आत्मा) परमात्मा (अस्य जन्तोः) इस जीव की (गुहायाम्) बुद्धि की गुफा में (निहितः) छिपा हुआ है । (तम्) उस परमात्मा को (अक्रतुः) निष्काम भाव से कर्म्म करनेवाला पुरुष (पश्यति) देखता है, (वीतशोकः) शोक रहित हो जाता है (धातुः) सब के धारण करनेवाले परमात्मा की (प्रसादात्) कृपा से (महिमानम्) महिमा को (आत्मनः) आत्मा की ॥२०॥

व्याख्या—जीवात्मा के स्वरूप-वर्णन के अनन्तर आचार्य्य ने

मंत्र १८ 'हन्यते हन्यमाने शरीरे' का पाठ प्रमाण है । परमात्मा का तो शरीर होता ही नहीं, जीव का होता हैं । अतः शरीर पद के आने से यहां जीव ग्राह्य है, परमात्मा नहीं । कई कहते हैं कि ईश्वर का शरीर प्रकृति है। यदि यह माना जावे, तो मन्त्र १९ में आये मारने और मरनेवाले जीव होते हैं, परमात्मा नहीं ।

परमात्मा का वर्णन बतलाया है—हे नचिकेता! वह ब्रह्मशक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान् से महान् है। वह आत्मा यद्यपि सर्वव्यापक है, पर उसका अनुभव करना हो,तो पुरुष अपने हृदय में ही अनुभव कर सकता है। जैसे रेडियो की तरंगें सर्वत्र फैलती हैं,पर उसका शब्द नहीं सुनाई देता, उस ध्वनि को लेनेवाला रिसीवर ही है, इसी प्रकार सर्वत्र व्यापक ब्रह्म की अनुभूति का स्थान जीव का हृदय ही है। उस प्रभु की महिमा का वही अनुभव कर सकता है, जो निष्काम भाव से कार्य करता है। ऐसे मनुष्य पर धाता भगवान् की जब कृपा होती है, तो वह कृतकृत्य होकर जन्म-मरण, शोक और दुःख से रहित हो जाता हैं ॥२०॥*

20. He—the Supreme soul is subtler than the subtlest —is greater than the greatest. He is hidden in the depth of every heart. A man who has no desire for the fruits of his action finds Him there, is free from all sorrow and with God's grace, vividly feels his greatness.†

---

*टिप्पणी—(१) मन्त्र में जन्तु (=जीव) की गुफा में वह महती शक्ति परमात्मा छिपा हुआ है, यह सिद्ध करता है कि जीव उस परमात्मा से पृथक् सत्ता है।

(२) इस मन्त्र में यह भी आया है कि परमात्मा की कृपा से जीव आत्मा की महिमा को जान सकता है। यह पाठ भी सिद्ध करता है कि जीव और ब्रह्म दो पृथक् सत्तायें हैं। क्योंकि ब्रह्म अपने पर आप कृपा नहीं करता, वह तो किसी भिन्न आत्मा पर दया करके अपने स्वरूप को प्रकट करता है।

†After relating in 18, 19 verses on human soul Yama told about the Supreme Soul in this verse. In this he has laid a stress on this point, ultimately it is God's grace by which one knows Him.

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥२१॥

पदार्थ—(आसीनः) बैठा हुआ (दूरं व्रजति) दूर जाता है, (शयानः) सोया हुआ (याति) जाता है (सर्वतः) सब ओर (कः) कौन (तं) उस आत्मा को (मद+आमदं) जो आत्मा मद=आनंद और आमदं=परमानन्द सहित है, उस (देवं) देव को (मत्) तुझ से (अन्यः) दूसरा (ज्ञातुम्) जानने को (अर्हति) योग्य है ॥२१॥

व्याख्या—वह परमात्मा जाग्रत पुरुष की भांति बैठा हुआ दूर तक पहुंचा हुआ है। सोया हुआ अर्थात् महाप्रलय में प्रसुप्त प्रतीत होता हुआ भी सर्वत्र व्यापक है। इस प्रकार आनन्द और परमानन्द-रूप परम आत्मतत्त्व को मेरे बिना कौन जानने में समर्थ है?॥२१॥†

21. Seated)in dynamic aspect), it goes far and wide, sleeping (in latent aspect) it travels everywhere, who else than myself can know Him, the extremely blissful.*

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥२२॥

पदार्थ—(अशरीरम्) जो शरीररहित है (शरीरेषु) शरीरों में स्थित

†टिप्पणी—वह ईश्वर न सोता है न जागता हैं, न बैठता है न उठता है। परन्तु यहां अलंकार रूप से भगवान् के लिये आसीनः शयानः पद लगा दिये हैं। जैसे जागकर मनुष्य बैठता है, उसी प्रकार सृष्टि निर्माण के अनन्तर वह शक्ति जागती और विश्व का प्रबन्ध करती है। जैसे मनुष्य सोता है, उसी प्रकार महाप्रलय काल में परमात्मा को भी सोया हुआ वर्णित किया गया है।

*The words sitting and sleeping are symbolical.

है, (अनवस्थेषु) अस्थिर पदार्थों में (अवस्थितम्) स्थिररूप से स्थित है, (महान्तम्) उस महान् (विभुम्) व्यापक (आत्मानम्) आत्मा को (मत्वा) जानकर (धीरः) धीर पुरुष (न शोचति) शोक नहीं करता ॥२२॥

व्याख्या—वह व्यापक और महान् आत्मा स्वयं तो निराकार होने से शरीररहित है, पर सूर्य्य चन्द्र पृथिवी आदि आकारवान् शरीरों में स्थित है। स्वयं नित्य है, पर नश्वरशील कार्य्य जगत् में वह कूटस्थरूप से स्थित हो रहा है। इस प्रकार की महान् परम आत्मशक्ति को जब धीर पुरुष जान लेता है, तो वह शोक से तर-कर सदा परमानन्द का ही अनुभव करता है ॥२२॥

22. Himself bodiless but present in all bodies, firmly established in all things,non-firm,that great entity is omnipresent. Knowing thus the Great soul,the wise grieves not.

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो,
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्य-
स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥२३॥

पदार्थ—(न+अयं+आत्मा) नहीं यह आत्मा (प्रवचनेन) वेदाध्ययन तथा अध्यापन द्वारा (लभ्यः) प्राप्त होता (न मेधया) न बुद्धि से (न बहुना श्रुतेन) न बहुत सुनने से प्राप्त होता है। (यम् एव) जिसे ही (एषः) यह भगवान् (वृणुते) वर लेता है, (तेन लभ्यः) उसी से यह आत्मा पाने योग्य है। (तस्य) उस मुमुक्षु के प्रति (एषः आत्मा) यह आत्मा (विवृणुते) अभिव्यक्त कर देता है (तनूं+स्वाम्) अपने स्वरूप को ॥२३॥

व्याख्या—जो कोई वेदादि शास्त्राध्ययन व अध्यापनमात्र से ही ब्रह्म को पाना चाहे, तो नहीं पा सकता। बुद्धि की प्रखरता तथा

शास्त्रोपदेश के अधिक सुननेमात्र से भी कोई उसे नहीं पा सकता। आत्मा का प्रसाद तो उसे ही मिलता है, जिसे वह भगवान् स्वयं वर लेते हैं। जब भक्त के प्रति परमात्मा की अपार कृपा होती है, तो उस के प्रति वह अपने स्वरूप को स्वयं प्रकट कर देते हैं* ॥२३॥

23. That supreme soul cannot be known by mere study of the Vadas, not even by superior intellectualism, nor by much of hearing and learning—that man alone finds Him who is blessed by God's grace and to whom that self reveals.

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥२४॥

पदार्थ—(न+अविरत:) नहीं हटा (दुश्चरितात्) दुराचार से (न अशान्त:) जिसकी इन्द्रियां शान्त नहीं हुईं (न+असमाहित:) जिसकी वृत्तियें एकाग्र नहीं हैं (न+अशान्तमानस:) जिसका मन शान्त नहीं (वा+अपि) और भी (प्रज्ञानेन) केवल ज्ञान द्वारा (एनम्) इस आत्मा को (आप्नुयात्) प्राप्त होता [ऐसा भी नहीं] ॥२४॥

व्याख्या—पूर्व मंत्र में भगवान् की कृपा ही कल्याण करती है यह कहा है। उसकी दयादृष्टि का पात्र बनना आवश्यक है। जब पात्रता प्राप्त हो जाती है, तो ब्रह्म प्रसाद का अधिकारी स्वयमेव बन जाता है। केवल ऊंचे ज्ञान के अभिमान से उसे पाना चाहे, तो नहीं पा सकता। उसे प्राप्त करने के लिये दुराचार का त्याग करना होगा,

---

*टिप्पणी—केवल शास्त्राध्ययन अध्यापन श्रवण व बुद्धि की प्रखरता से कोई ब्रह्मप्राप्ति का अभिमान करे, तो वह भूलता है। भगवान् की दया-दृष्टि से ही आनन्द प्राप्त होता है। उसकी कृपा किन पर होती है, उसका वर्णन मन्त्र २४ में देखें।

इन्द्रियों को वश में करके शांति प्राप्त करनी होगी। मन की वृत्तियों को एकाग्र करना होगा, और मन को बाहर की वृत्तियों से निरोध करके शान्त करना होगा। जब यह हो जावेगा, तो हृदय में उस पवित्रात्मा की अनुभूति होनी आरम्भ हो जाती है। जो इन दुर्गुणों से पृथक् नहीं होता, और केवल विद्या के अभिमान से ही उसे पाना चाहता है, वह रेत की भित्ति पर खड़ा है। उसे अपने उद्देश्य में कभी भी सिद्धि नहीं हो सकती ॥२४॥

24. None who has not ceased doing evil, and who is not of calm mind—who is not self-controled, whose mind is not tranquilised by meditation, can find Him. He is not found by mere intellectualism.

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥२५॥

पदार्थ—[यस्य] जिसके [ब्रह्म] ब्रह्मबल [च] और [क्षत्रं च] क्षत्रबल [उभे] दोनों [भवतः] होते है [ओदनः] भात के (समान) [मृत्युः] मृत्यु [यस्य] जिसका [उपसेचनं] उपसेचन=भोजन के साथ खानेवाले शाक घी दही व्यंजन मरिच लवण आदि [कः] कौन साक्षात् [इत्था] इस प्रकार [वेद] जानता है [यत्र] जहां [सः] वह (आत्मा) है ॥२५॥

व्याख्या—वह ब्रह्मशक्ति, परम बलवती है। सब प्रकार के ब्रह्म तथा क्षात्र बल उसके सामने तुच्छ हैं। यदि कोई व्यक्ति बुद्धि के बल तथा सेनाबल से उसके संमुख अपने आप को बड़ा समझे, तो परमात्मशक्ति उसे ऐसे नष्ट कर देती है, जैसे कि भात को मनुष्य मुख में डाल जाता है। यह मृत्यु जो सब को ग्रस लेती है, वह उस परमात्मा का ऐसा साधन है, जैसे चावलों के साथ शाक दाल आदि व्यजंन होते हैं। कौन अभिमान करके उसे साक्षात् जान सकता है?

इसलिए उस महान् आत्मा को पाने के लिए मंत्र२४ में वर्णित आचरणही करना चाहिये। और सदाचार आदि गुणों से अपने जीवन को उन्नत करके ही कल्याण-मार्ग की प्राप्ति हो सकेगी, अन्यथा नहीं ॥२५॥

25. Whose food are both, the learned and the warrior—and the means employed is death—whe knows Him and where He is ?*

---

* That supreme entity is known as told in previous verse. Before His power, neither learning nor force can stand.

—

अथ

तृतीया वल्ली

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके,
गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति,
पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥१॥

पदार्थ—[ऋतं] ऋत के नियमों का [पिबन्तौ] सेवन करते हुए [सुकृतस्य लोके] शुभ कर्मों से प्राप्त होनेवाले मानव-देह में [गुहां] बुद्धि-रूपी गुफा में [प्रविष्टौ] दोनों प्रवेश किये हुए हैं [परमे] सर्वोत्तम [परार्धे] उत्कृष्ट (मानव जन्म में) [छाया+आतपौ] छाया और आतप =धूप के सदृश दो आत्मतत्त्व [ब्रह्मविदः] ब्रह्मवेत्ता [वदन्ति] कहते हैं [पञ्चाग्नयः] गृहस्थ [ये च] और जो [त्रिणाचिकेताः] जिन्होंने तीन बार नचिकेताग्नि चयन किया है ॥१॥

व्याख्या—सुकृत=शुभकृतियों से प्राप्त होनेवाले सर्वोत्तम और उत्कृष्ट मानव शरीर की बुद्धि में,दो प्रकार के(=जीवात्मा तथा पर-मात्मा) विलक्षण आत्मतत्त्वों का निवास है। ये दोनों छाया और आतप के समान हैं। जीव अविद्याअन्धकार में ग्रसित होने के कारण छाया,और तेजःस्वरूप होने से परमात्मा आतप(=प्रकाश)है। ऋत= सत्य नियमों का दोनों सेवन करते हैं। जीव कर्म्म फल भोगार्थ जन्म धारण करता है, और ईश्वर ऋत के नियम से सृष्टिरचना का प्रबन्ध

करता है। यही दोनों का ऋत का पान अर्थात् सेवन है। इस प्रकार सद्गृहस्थ और ब्रह्मवेत्ता कहते हैं ॥१॥[1]

१. टिप्पणी—(क) इस मन्त्र में पिबन्तौ, प्रविष्टौ, छायातपौ ये द्विवचन के रूप हैं जिससे स्पष्ट है कि आत्मतत्व दो हैं जिनमें एक छायामय जीव, और दूसरा आतपमय परमात्मा है। जो लोग जीव और ब्रह्म को एक कहते हैं, उनका कथन इस मन्त्र के विरुद्ध है। जीव और ब्रह्म दो तत्वों के लिये अन्य प्रमाण देखें। ऋग्वेद १।१६४।२० तथा मुण्डकोपनिषद ३।१।१—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥

इस देहरूपी वृक्ष में दो (=आत्मा तथा परमात्मारूपी) चेतन शक्तियों का निवास है।

य आत्मनि तिष्ठन् यमात्मा न वेद। बृहदारण्यक उपनिषद्, माध्यन्दिनी शाखा ३।७॥

जो परमात्मा इस जीवात्मा के भीतर भी निवास करना है, परन्तु यह जीव उसे नहीं जानता। इस मन्त्र में भी जीव ब्रह्म दो पृथक् सत्ताओं का वर्णन है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥

मुण्डक ३।१।२ तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् अध्याय ४ मन्त्र ७ में जीव को अनीश और परमात्मा को ईश लिखकर दो पृथक् सत्तायें बताई गयी हैं।

टिप्पणी—जीवात्मा प्रकृति के ऋत अर्थात् अटल सत्य नियमों के अनुसार अनेक जन्म धारण करके अपने किये कर्मों का उपभोग करता है। और परमात्मा उसी ऋत के नियम से प्रकृति की सृष्टि रचना करके जीवों के लिए जीवनसाधन सामग्री का प्रबन्ध करता है। यही जीव और परमात्मा का ऋत का पान अर्थात् सेवन है।

SECTION 1

CHAPTER 3

1. Knowers of spiritual knowledge say that the cosmic soul and thə individual soul are like sunshine and shadow—both seated in the depths of the heart in human bodies—the best products of Nature. They both perform their functions. This also say the performers of 5 (fires) sacrifices and performers of Nechiketa-Yagna*.

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतं शकेम हि ॥२॥

पदार्थ— [यः] जो [सेतुः] पुल के समान है [ईजानानां] यज्ञ करनेवालों के लिए [अक्षरं] अविनाशी [ब्रह्म] ब्रह्म [यत्] जो [परम्] उत्कृष्ट है [अभयं] जो निर्भय है [तितीर्षतां] संसार-सागर तरने की इच्छावालों के लिए [पारं] पार (=परला किनारा है) [नाचिकेतं] नाचिकेत अग्नि को [शकेमहि] जानने में हम समर्थ हों ॥२॥

व्याख्या—हे प्रभो ! हम उस नाचिकेत अग्नि को जानने की शक्ति प्राप्त करें, जो याज्ञिक लोगों के लिए संसार-सागर तरने के लिए पुल के समान है । हम उसके द्वारा अविनाशी परब्रह्म को प्राप्त करने में समर्थ हों ॥२॥

2. May we also understand this Nachiketa Yegna which serves as a bridge to heaven across the shores of life, and which leads to the knowledge of that imperrsh-fear—high and fearless God.

---

*(a) In this Yama already mentions about two souls.
(b) Both perform their respective functions by acting according to law of nature.

संगति--परमात्मा को पाने के लिये पुरुष किन साधनों से सम्पन्न हो, अतः मंत्र ३ से ९ पर्यन्त यहां पुनः शरीरस्थ जीवात्मा का वर्णन किया गया है—

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥३॥

पदार्थ—[आत्मानं] आत्मा को [रथिनं] रथी [विद्धि] जान, [शरीरं] शरीर को [रथं] रथ [एव तु] ही तो (जान) [बुद्धिं तु] बुद्धि को तो [सारथिं] सारथी [विद्धि] जान, [मनः] मन को [प्रग्रहं] रास=लगाम [एव] ही (जान) ॥३॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥४॥

पदार्थ—[इन्द्रियाणि] इन्द्रियों को [हयान्] घोड़े [आहुः] कहते हैं [विषयान्] विषयों को [तेषु] उनमें [गोचरान्] विचरने का मार्ग (कहते हैं)। [आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं] आत्मा इन्द्रिय और मन के साथ युक्त होकर [भोक्ता] पदार्थों का उपभोग करता है [इति] इस प्रकार [आहुः] कहते हैं [मनीषिणः] बुद्धिमान् लोग ॥४॥

व्याख्या—मंत्र ३ और ४ में आत्मा और शरीर को रथी और रथ की उपमा दी है। रथ में बुद्धि सारथि की भांति शरीर को चलाती है। और नेत्र कर्ण आदि इन्द्रियें घोड़ेरूप, शब्द आदि विषयरूपी मार्गों पर चलनेवाले बताए हैं। जिस प्रकार सारथि रास से घोड़ों को नियम से चलाता है, उसी प्रकार आत्मा बुद्धि के द्वारा मन को रास बनाकर इन्द्रियों को नियम से चलाता है। रथ में बैठा हुआ जैसे रथ का स्वामी सब पदार्थों को देखता है, उसी प्रकार इस

रथरूप शरीर में बैठा हुआ जीवात्मा, इन्द्रियों और मन के संयोग द्वारा सुख-दुःख का उपभोग करता है। वास्तव में यहां भोक्ता आत्मा ही है, शेष बुद्धि मन इन्द्रियां आदि उसके साधन हैं ॥४॥*

3. Know that the soul is like the master of a chariot and body is like the chariot, intellect is like its driver and the mind is like the reins of the horses.

4. Senses are horses, sense objects are the paths, soul in company with body, mind and the senses, enjoys, the sense objects, thus, say the wise men.

---

*टिप्पणी—मंत्र ३ में बुद्धि को सारथी की उपमा देकर कई भाष्यकारों को यह भ्रम हुआ है कि—'जैसे सारथि घोड़ों को चलाता है, इसी प्रकार बुद्धि स्वयं न चेतन होती हुई भी आत्मा के चिद् आभास से चेतनता के काम करती है। सुख-दुःख का उपभोग बुद्धि ही करती है आत्मा नहीं, क्योंकि आत्मा निर्लेप है। 'वह सुख-दुःख के संग से ऊपर है।' उन का यह विचार मंत्र ४ में आए हुए "आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः" से खण्डित हो जाता है। इसमें स्पष्ट लिखा है कि आत्मा इन्द्रिय और मन के साथ युक्त हुआ भोक्ता है। ऋग्वेद और मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट लिखा है कि—"तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति" अर्थात् जीवात्मा ही कर्मों का फल स्वादु करके खाता है। प्रश्नोपनिषद् प्रश्न ४ मन्त्र ९ में आत्मा को द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता आदि लिखा है—"एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः"। इन मंत्रों की प्रमाणता से सिद्ध है कि—मानव शरीर में बुद्धि जड़ है, और आत्मा के ज्ञान का साधन है। वह बुद्धि स्वयं सुख-दुःख की भोगनेवाली नहीं। सुख-दुःख का अनुभव करनेवाला जीवात्मा ही है।

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ।।५।।

पदार्थ—[यः तु] जो तो [अविज्ञानवान्] अज्ञानी [भवति] होता है [अयुक्तेन] अस्थिर [मनसा] मन से [सदा] सदा । [तस्य] उसकी [इन्द्रियाणि] इन्द्रियें [अवश्यानि] वश में नहीं होतीं [दुष्ट] दुष्ट [अश्वाः] घोड़े [इव] जैसे [सारथेः] सारथि के ।।५।।

व्याख्या—जो विज्ञानवान् नहीं, और जिसका मन स्थिर नहीं, उसकी इन्द्रियें वश में कभी नहीं रहतीं; जैसे दुष्ट घोड़े सारथि के वश में नहीं होते ।।५।।

5. One who does not understand Him—his mind is always uncontrolable, his senses go astray like the wild horses, not under the control of the driver.

यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ।।६।।

पदार्थ—[यः तु] जो तो [विज्ञानवान्] ज्ञानी [भवति] है [युक्तेन] स्थिर [मनसा] मन से [सदा] सदा । [तस्य] उसकी [इन्द्रियाणि] इन्द्रियें [वश्यानि] वश में होती हैं [सत्] उत्तम [अश्वाः] घोड़े [इव] जैसे [सारथेः] सारथि के ।।६।।

व्याख्या—उत्तम घोड़े जैसे सारथि के वश में होते हैं, उसी प्रकार जिसका मन वश में है और स्थिर है, वही विज्ञानवान् पुरुष इन्द्रियों को वश में कर सकता है ।।६।।

6. One who understands Him, his mind is always poised, his senses obey his will, just as trained horses under the control of a driver.

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥७॥

पदार्थ—[यः तु] जो तो [अविज्ञानवान्] अज्ञानी [भवति] है [अमनस्कः] असंयत चित्तवाला [सदा] सदा [अशुचिः] अपवित्र। [न सः] नहीं वह [तत्] उस [पदं] मोक्षपद को [आप्नोति] प्राप्त होता [संसारं] संसार को [च] और [अधिगच्छति] प्राप्त होता है ॥७॥

व्याख्या—जिसमें विज्ञान नहीं, और चित्त की एकाग्रता नहीं, जिसका जीवन अपवित्र है, वह उस परमपद मोक्ष को प्राप्त नहीं होता। प्रत्युत जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा हुआ बार-बार संसार को प्राप्त होता है ॥७॥

7. He who is devoid of proper understanding, thoughtless, of impure mind, never attains that goal, but gets involved into the wheel of births and deaths.

यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥८॥

पदार्थ—(यः तु) जो तो (विज्ञानवान् भवति) ज्ञानी होता है (समनस्कः) स्थिरचित्त (सदा) सदा (शुचिः) पवित्र। (सः तु) वह तो (तत्) उस (पदम्) पद को (आप्नोति) प्राप्त होता है, (यस्मात्) जिससे (भूयः) फिर (न) नहीं (जायते) जन्मता ॥८॥

व्याख्या—स्थिरचित्त सदा पवित्र और विज्ञानवान् पुरुष अमृत होकर मोक्षपद को प्राप्त होता है, और सदा के लिए जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है ॥८॥

8. A man of pure understanding, who has a steady

mind, and who leads ever a pure life, verily reaches that goal, whence thre is no return.

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥९॥

पदार्थ — (विज्ञान) बुद्धि (सारथिः) जिसकी सारथि है (यः तु) जो तो (मनः) मन की (प्रग्रहवान्) रासोंवाला [नरः] नर। [सः] वह [अध्वनः] मार्ग के [पारं] पार [आप्नोति] प्राप्त होता है [तत्] उस [विष्णोः] परमात्मा के [परमं] श्रेष्ठ [पदम्] पद को ॥९॥

व्याख्या — विवेक-बुद्धि-युक्त पुरुष, जिसने मन को रास (लगाम) बनाकर इन्द्रियों को वश में किया हुआ है; वह इस संसार से पार होकर भगवान् के परम पद मोक्षधाम को प्राप्त होता है॥९॥

9. A man of intellect, whose mind holds the reins of his sensations like a good driver—crosses over the paths of the world to the highest goal of bliss and attains salvation.

संगति— इन्द्रियों को असत् मार्ग से हटाकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म ब्रह्म की ओर लगाने का प्रकार बताया है—

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥१०॥

पदार्थ—[इन्द्रियेभ्यः] इन्द्रियों से [पराः] सूक्ष्म हैं [हि] निश्चय से [अर्थाः] गन्धादिरूप विषय [अर्थेभ्यः] विषयों से [च] और [परं] सूक्ष्म है [मनः] मन। [मनसः] मन से [तु] तो [परा] सूक्ष्म है [बुद्धिः] बुद्धि (=अहकार) [बुद्धेः] बुद्धि से [परः] सूक्ष्म है [आत्मा महान्] महतत्त्व ॥१०॥

10. Sense objects are subtler than the senses, mind is subtler than the sense objects, बुद्धि (अहंकार) intellect is subtler than mind, manifested matter (महत्तत्व Maha Tatva) is subtler than अहंकार [Ahankar].

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥११॥

पदार्थ—(महतः) महतत्त्व से (परम्) सूक्ष्म है (अव्यक्तं) मूल प्रकृति (अव्यक्तात्) प्रकृति से (पुरुषः) पुरुष (परः) सूक्ष्म है। (पुरुषात्) पुरुष से (न परं) नहीं परे (किंचित्) कुछ भी (सा) वह (काष्ठा) सीमा है (सा) वह (परा) अन्तिम (गतिः) गति है ॥११॥

व्याख्या—मंत्र १० और ११ में सांख्यशास्त्र के अनुसार वर्णन किया गया है कि इन्द्रियों से गंधादि पंचतन्मात्रारूप विषय, पंचतन्मात्रा से मन, मन से बुद्धितत्त्व अर्थात् अहंकार, अहंकार से महत्तत्त्व, और महत्तत्त्व से मूल प्रकृति परे अर्थात् सूक्ष्म है। उस मूल प्रकृति से भी परे परम पुरुष परमात्मा है, उससे परे कुछ नहीं, वह अन्तिम सीमा है ॥११॥

11. The unmanifested Matter [Prakriti] is subter than the manifested matter. The supreme soul is subtler than that, there is no subtler than He. He is the highest goal and He is topmost.

एषः सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥१२॥

पदार्थ—[एषः] यह [सर्वेषु] सब [भूतेषु] भूतों में [गूढः] छिपा

हुआ [त्मा] आत्मा [न] नहीं [प्रकाशते] प्रकट होता। [दृश्यते] दिखाई देता है [तु] तो [अग्र्यया] श्रेष्ठ [बुद्ध्या सूक्ष्मया] सूक्ष्म बुद्धि से [सूक्ष्मदर्शिभिः] सूक्ष्मदर्शियों द्वारा ॥१२॥

व्याख्या—सूक्ष्म प्रकृति से भी परमात्मा परम सूक्ष्म है। वह गूढ़ अर्थात् छिपा हुआ है। उस गूढ़ पुरुष को साधारण लोग अनुभव नहीं कर सकते। उसे तो श्रेष्ठ और सूक्ष्मबुद्धिवाले पुरुष अपनी बुद्धि से अनुभव कर सकते हैं, दूसरे नहीं ॥१२॥

12. The supreme soul is hidden inside all, is not visible. He is known only through a man of superior intellect and deep insight.

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञ-
स्तद्यच्छेत् ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्,
तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥१३॥

पदार्थ—[यच्छेत्] स्थित करे [वाङ्मनसी] वाणी को मन में [प्राज्ञः] बुद्धिमान् [तत्] उस मन को [यच्छेत्] स्थित करे [ज्ञाने आत्मनि] अहंकार (बुद्धि) तत्त्व में। [ज्ञानं] ज्ञान (बुद्धितत्त्व) को [आत्मनि महति] महत्तत्त्व में [नियच्छेत्] स्थित करे [तत्] उस महत्तत्त्व को [यच्छेत्] स्थित करे [शांते आत्मनि] शांत आत्मा परमात्मा में ॥१३॥*

---

*टिप्पणी—मन्त्र १३ में वाङ्मनसी पाठ है, वहां मनसि सप्तम्यन्त पद के स्थान पर मनसी दीर्घ पद है, जो छान्दस समझकर स्वीकार करना चाहिये। साङ्ख्यदर्शन में लिखा है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारो

व्याख्या—जो पुरुष ब्रह्मतत्त्व के दर्शन करना चाहता है वह पहले अपनी वाणी आदि ज्ञानेन्द्रियों को मन में लय करे। जब इन्द्रियें निरुद्ध हो जावें, तो मन को ज्ञानात्मा बुद्धितत्त्व अर्थात् अहंकार जो कि प्रकृति का दूसरा विकार है, उसमें युक्त करे, बुद्धितत्त्व को महत्तत्त्व जो कि मूल प्रकृति का पहला विकार है उसमें युक्त करे। जब प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्त्व को अनुभव कर लेवे, तो उसके अनन्तर परम-सूक्ष्म तत्त्व परमात्मा में अपने को निरुद्ध करे। सांख्य वादियों का सृष्टिज्ञान के अनन्तर ब्रह्म-प्राप्ति का यही मार्ग है ॥१३।

13. For a wiseman, to attain the highest goal, his sense of speech etc. should merge in the mind, and his mind should merge in his अहंकार तत्त्व and his अहंकार तत्त्व should merge in महत्तत्व—unmanifested matter. Then महत्तत्त्व should merge, on being controlled, in the great peaceful supreme soul.

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥१४॥

ऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः" ॥ अध्याय १ । सूत्र ६१॥

अर्थ—[सत्त्व] शुद्ध [रजः] मध्य [तमः] जाड्य अर्थात् जडता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है, उसका नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्त्व, उससे अहंकार, उससे पञ्चतन्मात्रा दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन, पञ्चतन्मात्राओं से पृथिवी आदि पांच स्थूल भूत ये चौबीस और पचीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर ॥

पदार्थ—[उत्तिष्ठत] उठो [जाग्रत]जागो [प्राप्य]पहुंचकर [वरान्] श्रेष्ठ पुरुषों को [निबोधत]जानो।[क्षुरस्य धारा] छुरे की धारा [निशिता] तीक्ष्ण [दुरत्यया] दुस्तर होती है। ऐसे ही [दुर्गं] कठिन [पथः] मार्ग [तत्] वह [कवयः] ज्ञानी लोग [वदन्ति] कहते हैं ॥१४॥

व्याख्या—ज्ञानियों का कथन है कि जिस प्रकार छुरे की तीक्ष्ण धारा के ऊपर चलना कठिन है, इसी प्रकार अध्यात्मवाद का मार्ग भी बड़ा दुर्गम है। चलनेवाले को जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसलिए तत्त्वज्ञानी लोग अविद्याग्रस्त विषयलीन सांसारिक पुरुषों को हाथ उठाकर ऊचे स्वर से कहते हैं कि—हे लोगो ! उठो, अविद्या की नींद से जागो, श्रेष्ठ पुरुषों की शरण में जाकर उस ब्रह्मविद्या के तत्त्व को समझो ॥१४॥

14 Oh ye men of the world, arise, awake and learn from the wisemen. The spiritual path is beset with great obstacles. It is like walking on the sharp edge of a sharpened razor—so say the wisemen of old.

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं,
तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं,
निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥१५॥

पदार्थ—[अशब्दं] वह शब्द का विषय नहीं [अस्पर्शं] वह स्पर्श का विषय नहीं [अरूपं] वह रूप का विषय नहीं [अव्ययं] अविकारी [तथा] वैसे ही [अरसं]रसना का विषय नहीं [नित्यं]नित्य [अगन्धवत्] जो घ्राण का विषय नहीं [यत्] जो [अनादि]अनादि [अनन्त]अनन्त [महतः परं]महत्तत्व

से भी सूक्ष्म है [ध्रुवं] निश्चल [निचाय्य] जानकर [तत्] उसको [मृत्युमुखात्] मृत्युमुख से [प्रमुच्यते] छूटता है ॥१५।

व्याख्या—मंत्र १४ में श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाकर उस आत्मा को जानने का वर्णन आता है। इस १५ मन्त्र में उस महाप्रभु परमात्मा के स्वरूप का वर्णन है, जिसे जानकर मनुष्य जन्म-मरण से छूटकर मोक्ष धाम को प्राप्त करता है। वह आत्मा शब्द स्पर्श रूप रस तथा घ्राण का विषय न होने से कर्ण त्वचा नेत्र जिह्वा और नासिका नामक जो ज्ञानेन्द्रियां हैं, इनकी पहुंच से परे है। वह ब्रह्म अविकारी है, प्रकृति की भांति उसमें कोई विकार परिणाम उत्पन्न नहीं होता। वह अनादि और अनन्त है। महत्तत्त्व जो कि प्रकृति का पहला विकार है, उससे भी अधिक सूक्ष्म है। वह सदा एकरस है ॥१५॥

15. The only way to escape from the cycles of births and deaths is to know Him, who is above all the senses of hearing, touch, sight etc. unchanged and also above taste and smell, who is eternal—without beginning and who is stable, beyond matter, who is greater than all.

संगति—उपनिषद् के सुनने और सुनाने का माहात्म्य लिखा है—

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम् ।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥१६॥

पदार्थ—[नाचिकेतं] नचिकेता की [उपाख्यानं] कथा को [मृत्यु-प्रोक्तं] मृत्यु से कही गई [सनातनम्] प्राचीन [उक्त्वा] कहकर [श्रुत्वा च] और सुनकर [मेधावी] बुद्धिमान् [ब्रह्मलोके] ब्रह्मलोक में [महीयते] महिमावाला होता है ॥१६।

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि ।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते,
तदानन्त्याय कल्पत इति ॥१७॥

पदार्थ—[यः] जो [इमं परमं] इस परम [गुह्यं] रहस्य को [श्रावयेत्] सुनाये [ब्रह्मसंसदि] विद्वानों की सभा में [प्रयतः] पवित्र होकर [श्राद्धकाले] श्राद्धकाल में* [वा] [तत्] वह [श्रानन्त्याय] अनन्त फल के लिये [कल्पते] समर्थ होता है ॥१७॥

व्याख्या—मंत्र १६ और १७ में इस कथा को पवित्र होकर ब्राह्ममुहूर्त में सुनने और सुनाने का माहात्म्य लिखा है। यहां पर अध्याय की समाप्ति के लिए 'आनन्त्याय कल्पते' पाठ दो बार आया है ॥१६, १७॥

16. The man of understanding, who tells anb who hears this ancient story of Nachiketa and Yama, as told by Yama is glorified [Attains glory].

17. Whosoever, with a pure mind, recites this story in the assembly of learned men, in their moments of faith (श्राद्धकाल) attains infinite glory.

---

* टिप्पणी—श्राद्धकाल का अर्थ है—श्राद्ध का समय। अर्थात् जिस समय शिष्य व जिज्ञासु श्रद्धापूर्वक ब्रह्मज्ञान सुनने को उपस्थित हों, उस काल का नाम 'श्राद्धकाल' है। कई भाष्यकार श्राद्धकाल का अर्थ मृतक-श्राद्ध के समय इस उपनिषद् को सुनाने का अवसर मानते हैं। यदि यही अर्थ माना जावे, तो वर्ष में एक बार ही इस उपनिषद् का पठन हो सकता है। क्योंकि श्राद्धकाल तो वर्ष में एक बार ही आता है।

अथ

द्वितीय अध्याय

चतुर्थी वल्ली

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयंभू-
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-
दावृत्तचक्षुरमृतत्त्वमिच्छन् ॥१॥

पदार्थ—(पराञ्चि) बाहर की ओर गतिवाली (खानि) इन्द्रियों को (व्यतृणत्) रचा है (स्वयम्भूः) परमात्मा ने (तस्मात्) इसी लिए (पराङ्) बाहर की ओर (पश्यति) देखता है (न) नहीं (अन्तरात्मन्) अन्तरात्मा में। (कश्चित्) कोई (धीरः) धीरपुरुष (प्रत्यक् आत्मानम्) अन्तरात्मा की ओर (ऐक्षत्) देखता है (आवृत्तचक्षुः) चक्षु आदि इन्द्रियों को बाहर की ओर से लौटाकर (अमृतत्त्वम्) अमृत की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ ॥१॥

व्याख्या—परमेश्वर ने नेत्र जिह्वा कर्ण नासिकादि ज्ञानेन्द्रियें रूप रस शब्द गन्धादि विषयों को अनुभव करने के लिये बाहिर मुखवाली बनायी हैं। इसीलिये पुरुष स्वाभाविक रूप से बहिर्मुख प्रवृत्तियों में अधिक झुकता है, और आत्माभिमुख वृत्तिवाला नहीं होता। सहस्रों में कोई ही धीर पुरुष, जिसे अमृत की इच्छा है, वह

बाहर के विषयों की ओर से अपनी इन्द्रियों को लौटा करके, आत्म-तत्त्व को अनुभव करने के लिये अन्तर्मुख होता है ॥१॥*

SECTION 2

CHAPTER 4

1. God has made all sense organs work outside, it is therefore, that they gaze outword rather than see the inner-self. Rarely some wise person seeking salvation, turns his senses towards self within.

पराचः कामाननुयन्ति बाला-
स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा,
ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥२॥

पदार्थ—(पराच:) बाहिर की ओर गतिवाली (कामान्) कामनाओं के (अनुयन्ति) पीछे दौड़ते हैं (बाला:) अज्ञानी (ते) वे (विततस्य मृत्यो:) मृत्यु के विस्तृत (पाशं) बन्धन में (यन्ति) फंसते हैं। (अथ) और (धीरा:) विवेकीजन (अमृतत्वं) अमरत्व को (विदित्वा) जानकर (ध्रुवं) स्थिर

*टिप्पणी—गीता में जो यह लिखा है कि "कश्चित् मां यतति सिद्धये" अर्थात् सहस्रों में कोई मनुष्य उसे पाने का यत्न करता है। तथा "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥ २।६९ ॥ अर्थात् साधारण मनुष्य जिस ओर प्रवृत्त होते हैं, मुनि उस ओर से उदासीन होते हैं। और जहां मुनि की प्रवृत्ति है, संसार उधर से उदासीन होता है। ये दोनों श्लोक इस मन्त्र के आधार से लिखे गये हैं।

वस्तु को (अध्रुवेषु) अस्थिर वस्तुओं में (न) नहीं (इह) इस लोक में (प्रार्थयन्ते) इच्छा करते हैं॥२॥

व्याख्या—अज्ञानी लोग बहिर्मुख हुए, विषय-वासना आदि भोगों के पीछे हर समय भागते रहते हैं। वे बालबुद्धि क्षणिक सांसारिक सुख में लीन हुए, मृत्यु के अनेक विस्तृत बन्धनों में फंसे हुए, बारबार जन्म-मरण के चक्र में पड़े रहते हैं। विवेकी जन मुक्ति के परमानन्दतत्त्व को पानेवाले, उस नित्य सुख को पाने के लिए, इन अध्रुव अर्थात् अस्थायी, क्षणभंगुर विषयों की ओर प्रवृत्त नहीं होते ॥२॥

2. The ignorant run affer worldly desires and thereby entangle themselves in the widespread death trep, but the spiritually minded, realising the unchanging (stable) immortal self, cease running after transitory objects of this world.

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान्स्पर्शांश्च मैथुनान् ।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते ॥ एतद्वै तत् ॥३॥

पदार्थ—(येन) जिस से (रूपं रसं गन्धं शब्दं स्पर्शांश्च) रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शों को, तथा (मैथुनान्) मैथुनसंभोगजन्य सुखों को (एतेन) इस से (एव) ही (विजानाति) भली प्रकार से अनुभव करता है। (किम्) क्या (अत्र) यहां (परिशिष्यते) शेष रह जाता है [एतत्) यह है (वै) निश्चय से (तत्) वह ॥३॥

व्याख्या—जीव जो रूप रस गन्ध तथा स्त्रीभोग-जन्य सुख-दुःखों को अनुभव करता है, यह भी उस परमात्मा की दी हुई नेत्र जिह्वा आदि इन्द्रियों के द्वारा ही करता है। यदि इन विषयों को अनु-

भव करने के लिये इन्द्रियगोलक न होते, तो जीवात्मा अनुभूति की सामर्थ्य रखता हुआ भी इन भोगों का उपभोग न कर सकता। केनोपनिषद् १।४ (यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते) में भी यही भाव पुष्ट किया गया है कि ब्रह्म वाणी से नहीं बतलाया जाता, प्रत्युत जिस वाणी में बोलने की शक्ति भगवान् की कृपा से मिली है। नचिकेता का यह प्रश्न कि अन्त में क्या शेष रह जाता है? इसका उत्तर भी इसी मन्त्र में दिया गया है कि—(एतत् वै तत्), अर्थात् यह है वह परम आत्मा, जो शेष रह जाता है ॥३॥

3. That, with whose help, the senses of sight, taste, smell, speech, of the hearing and of touch and of sexual organs work—verily that is supreme soul, what knowable then remains ? This is what thou seekest.

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥४॥

पदार्थ—[स्वप्नान्तं] स्वप्न के दृश्यों [जागरितान्तं च] और जागृत अवस्था के दृश्यों [उभौ] इन दोनों को [येन] जिसके प्रबन्ध से [अनुपश्यति] पुनः पुनः देखता है। [महान्तम्] महान् [विभुम्] व्यापक तथा सामर्थ्यवान् [आत्मानं] परमात्मा को [मत्वा] जानकर [धीरः] धीर पुरुष (न शोचति) नहीं शोक करता ॥४॥

व्याख्या—मन्त्र ३ में जो भाव प्रगट किया गया है, यह मन्त्र भी उसी भाव को अधिक रूप से स्पष्ट करता है कि—जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्था की लीलायें जो जीवात्मा अनुभव करता है, उसमें भी सारी व्यवस्था परमात्मा द्वारा ही की गई है। इस प्रकार के महान् तथा व्यापक आत्मा को ही अनुभव करके मुमुक्षु धीर पुरुष शोक अर्थात् दुःख को तर जाता है ॥४॥

4. The power with whose help, one visualises all what appears, while dreaming or wide awake, is that all pervading power. Comprehending Him, the wise grieve not.

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥ एतद्वै तत् ॥५॥

पदार्थ—(यः) जो धीर पुरुष (इमं) इस (मध्वदं जीवं) कर्मफल-भोगी जीव के (अन्तिकात्) समीप रहनेवाले (भूतभव्यस्य) भूत और भविष्यत् के (ईशानं आत्मान) ईशन [शासन] करनेवाले आत्मा को (वेद) जानता हैं, (न) नहीं (ततः) इसके अनन्तर (विजुगुप्सते) स्वात्मरक्षा का भय रहता । (एतत् वै तत्) यह है वह आत्मा ॥५॥

व्याख्या—इस मन्त्र में परमात्मा को कर्मफलभोगी जीव के समीप रहनेवाला बताया गया है । उस जीवात्मा के समीप रहनेवाले, तथा भूत और भविष्यत् में सब सृष्टि के शासक को जिस समय धीर पुरुष जान जाता है, तो उसे विजुगुप्सा अर्थात् उसे अभय हो जाने के कारण अपनी रक्षा की भावना नहीं रहती । गुरु ने शिष्य को यह बताया कि यह है वह आत्मा ॥५॥*

---

*टिप्पणी—इस मन्त्र में जीव को मधु+अद् मीठे फल का खानेवाला कहा है । यही भाव ऋग्वेद १।१६४।२०—"द्वा सुपर्णा" मन्त्र में जीव केलिये "स्वादु अत्ति" अर्थात् स्वादु करके कर्मफल का भोगनेवाला लिखा है । इन वाक्यों से यह भाव मिलता है कि सुख-दुःख जो भी कर्मफलानुसार हमें मिलते हैं, उन्हें स्वादु-मधु जानकर जीव ही भोगता है । कई भाष्यकारों ने इस मन्त्र में आये जीव पद से परमात्मा का ग्रहण किया है, जो नितान्त निर्मूल है ।

5. One who knows the supreme soul, the Lord of the past and the future, and also who is in close proximity of the individual soul enjoying the fruits of his actions, becomes thereby fearless, this is what thou seekest,

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत ॥
एतद्वै तत् ॥६॥

पदार्थ - (यः) जो परमात्मा [पूर्वं] पहले [तपसः] (सृष्टि-रचना के) संकल्प से (भी) [जातम्] विद्यमान था, [यः]जो [अद्भ्यः] वाष्प-मय सृष्टि से भी [पूर्वं] पहले [अजायत] प्रकट था।[गुहां] हृदयरूपी गुफा में [प्रविश्य] प्रवेश करके [तिष्ठन्तम्] स्थित [यः] जो [भूतेभिः] भूतों द्वारा [व्यपश्यत] देखता है वही (पुरुष यथार्थ देखता है)। [एतत् वै तत्] यह है वह आत्मा ॥६॥

व्याख्या—जो परमेश्वर सृष्टिरचना से भी पूर्व विद्यमान था, जो जलमय सृष्टि से भी पहले था, जो जीवात्माओं के साथ हृदय की गुफा में स्थित है ऐसा जो देखता है वही पुरुष यथार्थ देखता है। हे नचिकेता! जिस आत्मा के सम्बन्ध में तूने पूछा था,वह यह आत्मा है ॥६॥

6. He (God) was present before His will for creation, and also prior to the waters. He is omnipresent, having entered the depths of all beings. A man who sees god as such, sees rightly. This is what thou seekesf.

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी ।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्ती या भूतेभिर्व्यजायत ॥
एतद्वै तत् ॥७॥

पदार्थ—[या] जो [प्राणेन] प्राणन जीवन शक्ति में [सम्भवति] प्रकट हो रही है [अदितिः] अखण्डनीय [देवतामयी] सर्वदेवयुक्त । [गुहां] हृदय की गुफा में [प्रविश्य] प्रवेश करके [तिष्ठन्ती] स्थित हो रही है [या] जो शक्ति [भूतेभिः] भूतों द्वारा [व्यजायत] प्रकट हो रही है। [एतत् वै तत्] यह है वह ।।७।।

व्याख्या—जो जीवन द्वारा प्रकट हो रहा है, जो अखण्डनीय है, सब देवता जिसमें विद्यमान हैं, जो हृदय की गुफा में स्थित है, जो भूतों द्वार प्रकट हो रहा है । यह है वह आत्मा ।।७।।

7. That Supreme Soul in whom all Divine powers are centred, who is manifested in all conscious Energy, who is imperishable, who is energy personified, who is hidden in the cave of the hearts of men, who manifests Himself through all elements. This is what thou seekest.

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः ।
दिवे दिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ।।
एतद्वै तत् ।।८।।

पदार्थ—(अरण्योः) दो अरणी लकडियों में (निहितः) छिपा हुआ (जातवेदाः) अग्नि (गर्भ इव) गर्भ की भांति (सुभृतः) धारण किया हुआ है (गर्भिणीभिः) गर्भवती स्त्रियों से (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) स्तुति किया जाता है (जागृवद्भिः) जागरणशील निरालस (हविष्मद्भिः) हवि, यज्ञ साधन सामग्री से युक्त (मनुष्येभिः) मनुष्यों से (अग्निः)* परमात्मा । (एतत् वै तत्) यह है वह ।।८।।

---

*टिप्पणी—इस मंत्र में अग्नि का अर्थ परमात्मा है । देखो प्रमाण-

व्याख्या—हे शिष्य ! यह है वह आत्मा, जो सब संसार में इस प्रकार छिपा हुआ है, जैसे अरणी लकड़ियों में अग्नि छिपी हुई है। जिस प्रकार गर्भवती स्त्रियें गर्भ को धारण किये हुए हैं, उसी प्रकार जिसे योगीजन हृदय में धारण किये हुए हैं, वह परमात्मा प्रतिदिन यज्ञ की सामग्री-युक्त प्रमादरहित, याज्ञिक भक्तों से स्तुति किया जाता है, यह है वह आत्मा ॥८॥

8. As fire is latent in pieces of Arni wood, so is God latent within all. Just as a pregnant woman takes care of the life within her womb, so men do, who are ever awake, and who have the means of offering oblations in sacrifices. They daily praise Him. This is what thou seekest.

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति ।
तं देवाः सर्वे अर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥
एतद्वै तत् ॥९॥

पदार्थ—(यतः) जिससे (च) और (उदेति) उदय होता है (सूर्यः) सूर्य (अस्तं) अस्तभाव को (यत्र) जिसमें (गच्छति) प्राप्त होता है। (तं) उसी में (देवाः सर्वे) [सूर्यचन्द्रादि] सब देव (अर्पिताः) समर्पित अर्थात् आश्रित हैं। (तत् उ) उस ब्रह्मात्मशक्ति को (न अत्येति) नहीं लांघ सकता (कश्चन) कोई भी। (एतत् वै तत्) यह है वह ॥९॥

व्याख्या—जिस शक्ति से सूर्य उदय होता है, और जिसमें अस्त होता है, जिसमें सारे सूर्य चन्द्र-नक्षत्र-तारादि देव आश्रित हैं, उस

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निः० ॥ ऋग्वेद १।१६४।४६॥ इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि ईश्वर के नाम हैं।

परमात्मा के नियमों का कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता। यह है वह आत्मा ॥६॥

9. By whose power, the sun rises and sets, and in whom lies the entire cosmos. None can over-ride Him. This is what thou seekest.

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति
य इह नानेव पश्यति ॥१०॥

पदार्थ—(यद् एव) जो ही [परम आत्मशक्ति] (इह) इस लोक में है (तद्) वही (अमुत्र) सूर्यादि अन्य लोकों में है। (यद् अमुत्र) जो वहां है (तद् अनु इह) वही यहां है। (मृत्योः) मृत्यु से (सः) वह पुरुष (मृत्युं) मृत्यु को (आप्नोति) प्राप्त होता है (यः) जो पुरुष (इह) इसमें (नाना इव) नानापन=भेद अर्थात् अनेकता (पश्यति) देखता है ॥१०॥

व्याख्या—जो भगवान् इस लोक में सब व्यवस्था करता हैं, वही अन्य सूर्यादि लोकों का भी व्यवस्थापक है। जो मूढ़ पुरुष उस ब्रह्मशक्ति में नानापन देखता है, अर्थात् यह समझता है कि हमारे जगत् का नियंत्रण कोई और कर रहा है, और दूसरे जगतों का नियामक कोई और है, वह पुरुष मृत्यु से भी मृत्यु अर्थात् बार बार जन्म-मरण के चक्र में पड़ा रहता है ॥१०॥

10. The God that pervades here, pervades there also, who pervades there, pervades here also. Whoever thinks differant from this, finds himself entangled in the meshes of death.

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति
य इह नानेव पश्यति ॥११॥

पदार्थ—(मनसा) मनन शक्ति से (एव) ही (इदं) यह आत्मा (आप्तव्यम्) प्राप्त करने योग्य है। (न इह नाना अस्ति किंचन) नहीं हैं इस विश्व में नानापन। (मृत्योः सः मृत्युं गच्छति) मृत्यु से भी मृत्यु को वह प्राप्त होता है (य इह नानेव पश्यति) जो इस संसार में परमात्मशक्ति से भिन्न नानापन देखता है ॥११॥

व्याख्या—जो पुरुष इन भिन्न-भिन्न लोकों के पृथक्-पृथक् नियामक देखता है, वह मृत्यु से भी मृत्यु को प्राप्त होता है। वह एक ही आत्म-तत्त्व है, जो इस विश्व को धारण कर रहा है। वह मनन द्वारा प्राप्त किया जाता है ॥११॥

11. The fact that there is no different God can well be understood by a thoughtful mind, whoever thinks different from this, finds himself entangled in the meshes of death.

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते ॥
एतद्वै तत् ॥१२॥

पदार्थ—(अङ्गुष्ठमात्रः) अंगुष्ठपरिमाण हृदय में स्थित (पुरुषः) परमपुरुष परमेश्वर* (मध्ये आत्मनि) आत्मा के मध्य में (तिष्ठति) स्थित

---

*टिप्पणी :—(क) जहां छाती में धड़कनेवाला मांसपिण्ड हृदय कहाता है, वहां वैदिक साहित्य में मस्तिष्कान्तर्गत दोनों आज्ञाकेन्द्रों के मध्य जो ब्रह्मगुहा

है। (ईशानः) शासक है (भूतभव्यस्य) भूत और भविष्य का (ततः) उसे जान लेने के पश्चात् जीव (न विजुगुप्सते) नहीं भय करता। (एतत् वै तत्) यह है वह आत्मा ॥१२॥

व्याख्या—सर्वनियन्ता परमात्मा की अंगुष्ठपरिमाणवाले मस्तिष्कान्तर्गत हृदय में अनुभूति होने के कारण अंगुष्ठमात्र नाम से स्मरण किया गया है। वह अङ्गुष्ठमात्र परमेश्वर जीवात्मा के मध्य में भी स्थित है। वह भूत और भविष्य का ईशन करनेवाला है। इस प्रकार के सूक्ष्म और व्यापक ब्रह्म को जान लेने पर धीर मुमुक्षु के मन में किसी से भय नहीं रहता। हे शिष्य! यह है वह आत्मा ॥१२॥

12. God of the size of a thumb resides in the human soul. He is the controller of the past and the future. Knowing Him one fears not. This Is what thou seekest.*

है, वह स्थान भी हृदय कहाता है। उस ब्रह्मगुहा मे जो अवकाश Space है वह अंगुष्ठप्रमाण है। उस मस्तिष्कस्थ हृदय में ही ब्रह्म की अनुभूति की जाती है। इस लिए साहचर्य से यहां परमात्मा को भी अंगुष्ठमात्र कहा गया है। आजकल भी मोटर स्कूटर तथा टांगा चलानेवाले को दूर से बुलाना हो, तो ड्राइवर को भी ओ मोटर! ओ स्कूटर! ओ टांगा! कह देते हैं। जैसे यहां साहचर्य्य से चलानेवाला भी मोटर आदि नामों से व्यवहृत होता है, वैसे अंगुष्ठ प्रमाण हृदयस्थ परमात्मा को भी अंगुष्ठमात्र कहा गया है।

(ख) 'मध्ये आत्मनि' से सिद्ध है कि ब्रह्म जीवात्मा के भीतर भी स्थित है।

*There are two organs which are called हृदय—hearts in Vedic literature—one in the chest—an organ for circulation of blood and the second is in the

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः ॥
एतद्वै तत् ॥१३॥

पदार्थ—(अंगुष्ठमात्र: पुरुष:) अंगुष्ठ-परिमाण मस्तिष्कस्थ हृदयावकाश में स्थित परमपुरुष (ज्योति: इव) ज्योति की भांति (अधूमक:) अविद्यारूपी धूंए से रहित (ईशान: भूतभव्यस्य) भूत और भविष्य का शासक (स: एव) वह ही (अद्य) आज है (स उ श्व:) वह ही कल है। (एतत् वै तत्) यह है वह ॥१३॥

व्याख्या—अंगुष्ठमात्र, निर्मल ज्योति:स्वरूप, अविद्यारूप धूम से रहित, परम आत्मा है। भूत भविष्य का व्यवस्थापक, शासक भगवान् आज और कल अर्थात् नित्य रहनेवाला है। यह है वह आत्मा ॥१३॥

13. That God of the size of a thumb is like a blazing fire, which is without smoke. He is the Lord of the past and the future. He is present todey and will be tomorrow also. This is what thou seekest.

---

head near the ब्रह्मगुहा—where the human soul resides and feels sensations through the nerves of fhe brain. The use depends upon the context. This is clear from Atharvved X–2–26, 31, 32, 33 there the worb हृदय implies an orgon of the body, in the head. That space is of the size of a thumb. Hence the word अंगुष्ठमात्र: is used for supreme soul.

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।
एवं धर्मान् पृथक्पश्यंस्तानेवानुधावति ॥१४॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (उदकं) जल (दुर्गे) चोटी पर (वृष्टं) बरसा हुआ (पर्वतेषु) पर्वतों में (विधावति) सब ओर दौड़ता [बह जाता] है। (एवं) इसी प्रकार (धर्मान्) धर्मों [सृष्टिरचनादि गुणों] को गुणी से (पृथक्) भिन्न-भिन्न (पश्यन्) देखता हुआ (तान् एव अनु) उन्हीं के ही पीछे (धावति) दौड़ता है ॥१४॥

व्याख्या—मंत्र १३ तथा १४ में परमपुरुष को सब सृष्टि का सब कालों में ईशन करनेवाला माना है। अल्पमति उस भगवान् से पृथक् किन्हीं और धर्मों (=गुणों) अर्थात् शक्तियों को इस संसार का संचालक मानता है। उसकी वही अवस्था होती है, जो पर्वत शिखर पर बरसे जल की होती है। वृष्टि होने पर भी चोटी सदा सूखी तथा जलहीन रहती है। वह जल भी उस स्थान से गिर, भटक-भटक कर नीचे गिरता जाता है। धर्म धर्मी से पृथक नहीं हो सकते। सृष्टि-रचनादि चेतन सत्ता के गुण हैं, प्रकृति के नहीं। जो नास्तिक पुरुष ईश्वर से पृथक् किसी अन्य को संसार का रचयिता मानते हैं, वे विवेकभ्रष्ट हुए-हुए सदा नीच अवस्था को जाते हैं ॥१४॥

14. Just as water raining on the top of a mountain, runs through, down the different hills haphazardly, so does a man, who thinks of different laws working in the various phenomena of the nature. He runs about in confusion.

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥१५॥

पदार्थ :-(यथा) जैसे (शुद्धं) शुद्ध (उदकं) जल (शुद्धे) शुद्ध [जल में] (आसिक्तम्) डाला हुआ (तादृग् एव) वैसा ही (भवति) हो जाता है। (एवं) ऐसे ही (विजानतः) तत्त्वज्ञानी [त्यक्तकर्मफल संन्यासी] (मुनेः) मुनि का (आत्मा) आत्मा (भवति) हो जाता है, (गौतम) हे गौतम!॥१५॥

व्याख्या—जिस प्रकार शुद्ध जल में डाला हुआ शुद्ध जल उसके समान हो जाता है, इसी प्रकार हे गौतमवंशोत्पन्न नचिकेता! तत्त्वज्ञानी मुनि का आत्मा भी परमात्मा के दर्शन और अनुभूति से मलिनतारहित होकर तादृक् अर्थात् उस जैसा पवित्र हो जाता है। इसमें उपमा पवित्रता को प्रकट करने के लिये है॥१५॥

15. Oh Gautam! just as pure water mixed with pure water retains its purity, so does a soul of a learned thinker.*

---

*Note:—The word तादृक् is used here. This clearly shows that the soul, when purified, becomes pure just as God is. Entity of the soul remains separate, the word 'like' does not mean—'the same' meaning hereby that Supreme Soul and human soul are quite different.

अथ

पांचवीं वल्ली

संगति—इसी उपनिषद् की तीसरी वल्ली के प्रथम मन्त्र "ऋतं पिबन्तौ" में दो विलक्षण ग्रात्मतत्त्वों का वर्णन किया गया है। अब पांचवीं वल्ली के आरम्भ में पहले सात मन्त्रों में जीवात्मा का वर्णन है। तदनन्तर परमात्मा का वर्णन किया गया है।

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते॥
एतद्वै तत् ॥१॥

पदार्थ—(पुरम्) नगरी (एकादशद्वारम्) ग्यारह द्वारोंवाली (अजस्य) अजन्मा (अवक्रचेतसः) विकाररहित चेतन की। (अनुष्ठाय) ध्यान करके (न शोचति) शोक नहीं करता (विमुक्तः) बन्धनों से मुक्त होकर (विमुच्यते) सदा के लिये [जन्म मरण से] छूट जाता है। (एतत् वै तत्) यह है वह आत्मा ।१॥

व्याख्या—इस विकाररहित चेतनस्वरूप जीवात्मा का यह शरीर एक पुर (नगरी) है। इस नगरी में ग्यारह द्वार–जैसे दो आंख, दो कान, दो नासिकाछिद्र, एक मुखद्वार, एक सिर में ब्रह्मरन्ध्र, एक लिंग, एक गुदा, तथा एक नाभिछिद्र द्वार हैं। इस ग्यारह द्वारोंवाले पुर (शरीर) के तत्त्व को जब मनुष्य समझ जाता है कि—यह शरीर अनित्य विकारी तथा नाशवान् है, और यह आत्मा इससे

पृथक् चेतन नित्य अविकारी तथा अविनाशी है, तब वह शोक से तर जाता है। इस ध्यान और चिन्तन से अन्त में मुक्ति को प्राप्त करता है। हे नचिकेता! वह है यह ॥१॥

SECTION 2

CHAPTER 5

1. This birthless and conscious soul dwells in the body of 11 doors. * Having Known, that the soul and the body are separate entities, a man does not grieve, but becomes free from bondage and attains salvation.

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता,
वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा,
ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ।२॥

पदार्थ—वह जीव (हंसः) हंस है (शुचिषद्) शुद्ध लोकों में निवास के कारण यह (वसुः) वसु है (अन्तरिक्षसत्) अन्तरिक्ष में निवास के कारण (होता वेदिषद्) यज्ञवेदी पर हवन करने के कारण यह होता है (अतिथिः) वह अतिथि नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि (दुरोणसत्) घर-घर में निवास करता है। (नृषत्) वह मनुष्य देह में जन्मता है (वरसत्) श्रेष्ठ पुरुषों में जन्म लेता है। (ऋतसत्) सत्य के आचरण से ऋतसद् है (व्योमसत्) आकाशचारी है (अब्जा) जलों में उत्पन्न होता है (गोजा) गो=पृथिवी में उत्पन्न होता है

*Body of 11 doors. These are 2 eyes, 2 ears, 2 noses, mouth, naval, and 2 execretal organs and one in the crown of the head.

(ऋतजा) ऋत के अटल नियम से जन्म लेता है (अद्रिजा) पर्वतों में उत्पन्न होता है (ऋतं) वह स्वरूप से नित्य है (बृहत्) वह बड़ा है ।।२।।

व्याख्या—पवित्र लोक-लोकान्तरों में जन्म लेने से इस जीवात्मा का नाम हंस है। अन्तरिक्ष में विचरने के कारण यह वसु है। यज्ञ-वेदी पर हवन करने से इसका नाम होता है। अनेक दुरोण=घरों में निवास करने से इसे अतिथि कहते हैं। मनुष्यशरीर धारण करने से यह नृषद् है। ब्रह्मर्षि आदि श्रेष्ठ शरीरों में जन्म लेने से यह वरसद् है। ऋत=सत्य के आचरण से ऋतसद् है। आकाश में स्थित अनेक ग्रह नक्षत्र लोकों में जन्म लेने से यह व्योमसद् है। मछली मेंढक कछुआ आदि जलचर जीवों में उत्पन्न होने से यह अब्जा है। वृक्षादि स्थावर योनियों में उत्पन्न होने से यह गोजा है। परमात्मा की अटल व्यवस्था से जन्म लेने के कारण यह ऋतजा है। पर्वतों में अनेक जीव-जन्तुओं के शरीर धारण करने के कारण यह अद्रिजा है। यह सदा नित्य कूटस्थ होने से ऋत है। प्रकृति के अचेतन पदार्थों में सब से बड़ा होने के कारण यह बृहत् हैं। इस मन्त्र में भाव यह है कि यह जीव कर्मानुसार ईश्वर की व्यवस्था से भूमि जल आकाश आदि स्थानों में अनेक प्रकार की ऊंच-नीच योनियों में जन्म लेता है। अनेक जन्म धारण कर भी यह आत्मा नित्य अपरिणामी और अविनाशी है। देह का नाश होता है, आत्मा का नहीं ।।२।।

2. This human soul is called हंस (Hans), because it dwells in the pure regions. He is called 'Vasu', because he sometimes dwells in the middle regions (मध्यलोक). He is called होता—Hota when he sits in the altar of sacrifices. He is called अतिथि—Guest, because he visits many houses. He is called नृषद्—Nrishad, be-

cause he is born as a man. He is called वरसद्—Varsad, because sometimes he takes birth in superior yonis (births). He is calleb व्योमसद्—Vyomsad, because he takes birth in many planets. He is called गोजा—Goja, because he takes birth on earth, in plant life. He is called ऋतजा—Ritja, because he takes birth according to the laws of God. He is called अद्रिजा—Adrija, because he is born in the mountains. He is called ऋत—Rit, because he has a real entity. He is बृहद्—Brihad, because he is great. He is called ऋतसद्—Ritsat, when he follows truth.

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥३॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वं) ऊपर (प्राणं) प्राण को (उन्नयति) ले जाता है (अपानं) अपान को (प्रत्यक्) नीचे की ओर (अस्यति) फेंकता है । (मध्ये) शरीर के भीतर (वामनं) पूजनीय (आसीनं) बैठे हुए [आत्मा] को (विश्वे) सब (देवा:) इन्द्रियें (उपासते) पूजती हैं ॥३॥

3. This human soul takes the breath in, and sends it out. All the senses serve under him. He is adorable and is seated in the body.

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः ।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते ॥
एतद्वै तत् ॥४॥

पदार्थ—(अस्य) इस (शरीरस्थस्य) शरीर में स्थित (विस्रंसमानस्य) शरीर से निकलनेवाले (देहिनः) देह के स्वामी जीवात्मा के (देहात्) देह से (विमुच्यमानस्य) पृथक् होने पर (किम् अत्र) क्या यहां [इस देह में] (परिशिष्यते) शेष रह जाता है ? (एतत् वै तत्) निश्चय से यह वह है ॥४॥

व्याख्या—मन्त्र ३ और ४ में उस परमात्मा से पृथक् देही= जीवात्मा का वर्णन किया गया है। इसलिये इन दोनों मन्त्रों की व्याख्या इकट्ठी की गई है। मन्त्र ३ में स्पष्ट किया गया है कि—वह जीवात्मा शरीर में ठहरा हुआ प्राण और अपान को ऊपर और नीचे खैंचता और फैंकता है। इस शरीर में वह आत्मा (वामन) पूजनीय और सर्वश्रेष्ठ है। शेष सारी इन्द्रियें उसी पूजनीय देवात्मा की ही पूजा करती हैं। ज्ञानेन्द्रियें कर्मेन्द्रियें मन बुद्धि रक्त आदि सब द्रव्य शरीर में आवश्यक हैं। पर सब से श्रेष्ठ और आवश्यक द्रव्य आत्मा है। जिसके रहने पर ये रहते हैं, और निकल जाने पर निरर्थक हो जाते हैं। हे नचिकेता ! वह है यह।

शरीर तो पांच भूतों में मिल जाता है, केवल आत्मा अविनाशी होने से शेष रह जाता है। हे नचिकेता ! वह यह आत्मा है, जिसके सम्बन्ध में तूने पूछा था। इस शरीर में स्थित देही जीवात्मा मरण-काल में इस देह से पृथक् हो जाता है। इस मन्त्र से यह भी सिद्ध होता है कि जीवात्मा परिछिन्न है, विभु नहीं। जो एक शरीर से निकलकर दूसरी देह में चला जाता है ॥३,४॥

4. when the soul—dweller in this body, leaves it, what remains behind ? This is what thou seekest.

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥५॥

पदार्थ—(न) नहीं (प्राणेन) प्राण से (न) नहीं (अपानेन) अपान से (मर्त्यः) मनुष्य (जीवति) जीता है (कश्चन) कोई भी। (इतरेण) दूसरे [आत्मा से] (तु) ही (जीवन्ति) जीते हैं (यस्मिन्) जिस आत्मा के (एतौ) ये दोनों प्राण और अपान (उपाश्रितौ) आश्रित हैं ॥५॥

व्याख्या—मनुष्यजीवन श्वासों की गति इन प्राण और अपान से नहीं; प्रत्युत ये श्वास प्रश्वास भी किसी अन्य शक्ति के आश्रय से अपनी गति करते हैं। वह शक्ति जीवात्मा है, जिसके आश्रय से यह गति होती है। जब जीव इस देह से निकल जाता है, तो प्राण अपान अपने आप ही शान्त हो जाते हैं, और उनमें क्रिया नहीं होती। इस शरीर में चेष्टा का साधन जीवात्मा है, अन्य नहीं ॥५॥

5. Life of a man does not merely depend upon breathing in and breathing out. It depends upon something else, (soul) which regulates both of them.

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ।६॥

पदार्थ—(हन्त) अच्छा (ते) तुझे (इदं) इसको (प्रवक्ष्यामि) कहूंगा (गुह्यं) जो गूढ़ (ब्रह्म) ब्रह्म (सनातनम्) सनातन है। (यथा च) और जैसे (मरणं) मृत्यु को (प्राप्य) प्राप्त करके (आत्मा भवति) देहधारी आत्मा रहता है, (गौतम) हे गौतम! ॥६॥

व्याख्या—यम ने नचिकेता को पहले अनेक बार ब्रह्म और जीव का वर्णन बताया है। नचिकेता का तीसरा उत्कृष्ट वर यह था कि मरने के अनन्तर आत्मा कहां जाता है, और उसका क्या होता है? उस बात को समझाने के लिये गुरु ने सातवें मन्त्र में उसके आवश्यक प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से दे दिया है। इस मन्त्र में

ब्रह्म और आत्मा अर्थात् जीवात्मा दोनों के सम्बन्ध में गुरु ने विचार प्रकट किया है। मूल-मन्त्र में आये हुए "यथा च" पद में 'च' पद आत्मा और ब्रह्म दोनों की पृथक्ता प्रकट करता है। कई भाष्यकारों ने आत्मा से यहां परमात्मा का ही भाव लिया है, यह ठीक नहीं। यदि आत्मा पद से जीवात्मा का ग्रहण न होता, और ब्रह्म का ही ग्रहण होता, तो 'च' पद को आचार्य मूल मन्त्र में न रखते। सातवें मन्त्र में 'देहिन:' पद से देहधारी आत्मा का ही ग्रहण है, ब्रह्म का नहीं। ब्रह्म तो जन्म-मरण के चक्र से ऊपर है। देहधारी आत्मा अपने कर्म और ज्ञान संस्कार के अनुसार पशु पक्षी आदि योनियों तथा वृक्ष आदि स्थावरों में प्रवेश करता है। इसी कर्मचक्र में पड़ा हुआ अनेक योनियों के चक्र काटता रहता है। इन्हीं दो मन्त्रों में मरने के अनन्तर इस जीवधारी आत्मा की क्या अवस्था होती है, स्पष्टरूप से बता दिया है। यह जीव मरने के अनन्तर भी रहता है, और कर्म अनुसार अनेक योनियों में उत्पन्न होता रहता है ॥६॥

6. Surely Nachiketa Gautam, I shall now tell you of the hidden, eternal supreme scuf (God) and also where the individual soul goes after death.

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥७॥

पदार्थ—(योनिम्) योनि [गर्भ] को (अन्ये) कई एक (प्रपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं (शरीरत्वाय) शरीरधारण के लिए (देहिन:) देहधारी आत्मा। (स्थाणुम्) स्थावर वृक्षादि को (अन्ये) कई एक (अनुसंयन्ति) प्राप्त होते हैं (यथाकर्म) कर्मानुसार (यथाश्रुतम्) ज्ञान [संस्कार वासना] के अनुसार ॥७॥

व्याख्या—वैदिक सिद्धान्त का सार इस मन्त्र में बता दिया है

कि—प्रत्येक जीव मरने के अनन्तर अपने कर्म और संस्कार वासना के अनुसार अनेक प्रकार की योनियों में जाकर कर्मफल का उपभोग करता रहता है। कर्मफल भोगकर उसे उन्नत करने का फिर अवसर मानव देह में ही मिलता है। मनुष्यशरीर भोग और कर्म योनि है। इसमें अपने कर्मों का फल भी भोगता रहता है, और नये कर्म करने का अवसर भी मिलता रहता है। मनुष्यदेह से भिन्न योनियों में प्रविष्ट हुआ हुआ जीव केवल फलभोक्ता है कर्त्ता नहीं। इसलिये वे भोग योनियें हैं। सिंह व्याघ्रादि जीव प्रतिदिन हिंसा करने पर भी उसका फल नहीं भोगते, क्यों कि वे तो यन्त्रारूढ़ जड़ पदार्थों की भांति बिना ज्ञान के अपनी पूर्व वृत्ति और संस्कार के अनुसार कार्य करते रहते हैं। उन्हें कुछ ज्ञान नहीं कि क्या करना और क्या नहीं। मनुष्यशरीर में कर्मेन्द्रियें और ज्ञानेन्द्रियें हैं, साथ ही मन और बुद्धि है,जिससे भले बुरे की पहचान होती रहती है। पशु-पक्षियों में यह ज्ञानबुद्धि नहीं। उनमें स्वाभाविक ज्ञान *Instinct* है, नैमित्तिक ज्ञान *Intellect* नहीं।

7. Some souls, after death, enter a womb for rebirth, some enter the world of plant life and in other lives, according to their actions, and according to their impressions.

संगति—पूर्व के सात मंत्रों में जीवात्मा का वर्णन करके अब गुह्य ब्रह्म का वर्णन करते हैं—

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन॥
एतद्वै तत् ॥८॥

पदार्थ—(यः एषः) जो यह ब्रह्म (सुप्तेषु) [अविद्या की गाढ़ निद्रा में] सो : हुए [जीवों में] (जागर्ति) जागता है, (कामं कामं) प्रति कामना-पूर्ति को (पुरुषः) वह ब्रह्म पुरुष (निर्मिमाणः) निर्माण करता हुआ । (तद् एव) वह ही (शुक्रम्) ज्योतिःस्वरूप है (तत्) वह (ब्रह्म) बड़ा है (तत् एव) वह ही (अमृतम्) अमृत (उच्यते) कहलाता है । (तस्मिन्) उसी ब्रह्म में (लोकाः) सारे लोक (श्रिताः) आश्रय लिये हुए हैं (तत् उ) उसे (न) नहीं (अत्येति) उलांघ सकता (कश्चन) कोई भी। (एतत् वै तत्) यह है वह [जिसे तुमने पूछा था]॥८॥

व्याख्या—मंत्र में "प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म"=तुझे रहस्यमय ब्रह्म बतलाऊंगा कह कर गुरु ने प्रतिज्ञा की थी, अब मन्त्र ८ में उस ब्रह्म का वर्णन बतलया है कि—वह ब्रह्म पुरुष अर्थात् सब पुरों में व्याप्त है। वह ज्योतिःस्वरूप महान् और अमृत है। सब लोक-लोकान्तर अपनी स्थिति के लिये उसी का आश्रय लिये हुए हैं। कोई भी उसके नियमों का अतिक्रमण नहीं कर सकता। अविद्या की मोहमयी निद्रा में जीव जागते हुए भी सोये पड़े हैं। उनकी देह देश तथा योनि के अनुसार जीवन की कामनाओं को रचनेवाला वह परम प्रभु ही जागता है। सब के जीवन के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार की इन्द्रियें और पदार्थों का निर्माण किये हुए हैं। हे नचिकेता ! जीवात्मा तो कर्मानुसार मरणानन्तर भिन्न-भिन्न शरीरों में प्रवेश करता है, पर वह ब्रह्म अमृत है, और संसार को संभाले हुए है ॥८॥

8. He [the Supreme Soul] is ever effulgent, is called immortal, is always wide awake and ever busy, shaping the multifarious desires of His creatures, who are quite asleep to what is happening around, the entire universe is dependant on Him. None can override His laws. This is that.

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो,
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।।९।।

पदार्थ—(अग्निः) अग्नि (यथा) जैसे (एकः) एक (भुवनं) संसार में (प्रविष्टः) प्रविष्ट हुआ (रूपं रूपं) रूप रू में (प्रतिरूपः) अनुरूप (बभूव) हुआ हुआ। (एकः) एक (तथा) वैसे ही (सर्वभूतान्तरात्मा) समस्त भूतों के भीतर रहता हुआ आत्मा (रूपं रूपं) रूप-रूप के (प्रतिरूपः) अनुरूप हुआ (बहिः च) और बाहर भी है ।।९।।

व्याख्या ब्रह्म के स्वरूप को अधिक विस्तार से समझाने के लिये गुरु ने अग्नि के दृष्टान्त से परमात्मा की व्यापकता और तद्रूपता समझाई है। जैसे अग्नि लकड़ी जल पत्थर आदि पदार्थों में प्रविष्ट हुआ, उन पदार्थों में उन्हीं के अनुरूप हो करके विराज रहा है। उसमें रहता हुआ भी अग्नि पृथक् रूप से दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार ब्रह्म की सत्ता सब पदार्थों में विद्यमान है। वह उनके अनुरूप होकर उनमें रहता है। प्रत्यक्षरूप से उसे कोई देख नहीं पाता ।।९।।

9. Just as fire pervades the entire objective world, and assumes various shapes and forms—so does the supreme soul pervade everywhere and manifests himself, in various shapes and forms inside as well as outside.

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो,
रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,
रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥१०॥

पदार्थ—(वायुः) वायु (यथा) जैसे (एकः) अकेला (भुवनं) संसार में (प्रविष्टः) प्रविष्ट हुआ-हुआ (रूपं रूपं) रूप-रूप में (प्रतिरूपः) अनुरूप (बभूव) हुआ हुआ ।(एकः) एक (तथा) वैसे ही (सर्वभूतान्तरात्मा) समस्त भूतों के अन्तर आत्मा में रहता हुआ (रूपं रूपं) रूप रूप के (प्रतिरूपः) अनुरूप हुआ (बहिः च) और बाहर भी है ॥१०॥

व्याख्या—नवमें मंत्र में अग्नि को सब पदार्थों में व्यापक, और प्रत्येक पदार्थ में उसकी प्रतिरूपता प्रकट की है । मंत्र १० में वायु की व्यापकता तथा और पदार्थों में तद्रूपता के दृष्टान्त से ब्रह्म की व्यापकता और प्रतिरूपता वर्णन की गयी है ॥१०॥

10. Just as the subtle air pervades everywhere in the objective world, and assumes various shapes and forms, wherein it is present, so does the supreme soul pervade everywhere, and manifests Himself in various shapes and forms, both in and outside.

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षु-
र्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा,
न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥११॥

पदार्थ—(सूर्यः) सूर्य (यथा) जैसे (सर्वलोकस्य) सब संसार का (चक्षुः) नेत्र है (न) नहीं (लिप्यते) लिप्त होता (चाक्षुषैः) नेत्रसम्बन्धी (बाह्य) बाहर के (दोषैः) दोषों से ।(एकः) एक परमात्मा (तथा) वैसे ही

(सर्वभूतान्तरात्मा) सब भूतों के अन्दर विद्यमान होता हुआ भी (न लिप्यते) नहीं लिप्त होता (लोकदुःखेन) सांसारिक दुःखों से (बाह्यः) पृथक् तथा बाहर भी है ॥११॥

व्याख्या—सूर्य का प्रकाश ही हमारे नेत्रों को सब प्रकार के पदार्थ दिखाने में साधन है। परन्तु नेत्र में लालिमा पीतता आदि जब रोग उत्पन्न हो जाते हैं, तो सूर्य-प्रकाश उन नेत्र के रोगों से दूषित नहीं होता। जैसे सूर्य नेत्र के रोगों से निर्लेप रहता है, इसी प्रकार सब भूतों के अन्दर व्यापक आत्मा सांसारिक जीवों के दुःखी होने पर भी स्वयं दुःखों से पृथक् रहता है। अविद्यादि दोष उस ब्रह्मशक्ति को प्रभावित नहीं कर सकते। वह इन सब दुःखों से बाह्य (ऊपर) है, उन्हें ये सांसारिक दोष लिप्त नहीं होते। बाह्य के अर्थ हैं बाहर ऊपर पृथक्। वह ब्रह्म सब के भीतर रहता हुआ बाहर भी है। वह सांसारिक पदार्थों में रहता हुआ भी इनसे ऊपर अर्थात् पृथक् है ॥११॥

11. Just as the sun is the eye of this world, yet any defect or blemish of the eye, does not affect the sun. so the supreme soul pervades all beings, yet troubles of the world affect Him not.

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा,
एकं रूपं बहुधा यः करोति ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥१२॥

पदार्थ—(एकः) वह ब्रह्म एक है (वशी) सब को अपने वश में रखने-

वाला (सर्वभूतान्तरात्मा) सब भूतों के अन्दर विद्यमान (एकं रूपं)* [अव्यक्त प्रकृति] के एक रूप को (बहुधा) अनेक प्रकार का (यः) जो (करोति) कर देता है। (तम्) उस भगवान् को (आत्मस्थं)† जो हमारे आत्मा में स्थित है (ये) जो (अनुपश्यन्ति) अनुभव करते हैं (धीराः) ज्ञानी लोग (तेषां) उन्हें (सुखं शाश्वतं) स्थायी सुख [प्राप्त होता है] (न) नहीं (इतरेषां) दूसरों को ॥१२॥

व्याख्या—इस मन्त्र में आचार्य ने परमात्मा को एक माना है, अनेक नहीं। वह अकेला सब चराचर जगत् में व्याप्त हुआ-हुआ अपने नियमों से सब को वश में कर रहा है। सूर्य तारादिगण तथा ग्रह उपग्रह जड़ होते हुए भी उसी के नियम से लाखों वर्षों से अपनी-अपनी परिधि में घूमते हुए ब्रह्मांड में स्थित हैं। जड़ अव्यक्त प्रकृति को अनेकों व्यक्त रूपों में प्रकट करनेवाली वही एक चेतन सत्ता है। यदि वह चेतन सत्ता इस अव्यक्त प्रकृति में गति न दे, तो इस प्रकार का सम्पूर्ण जगत् दृष्टिगोचर न हो। जड़ प्रकृति चेतन के बिना कोई भी कार्य नहीं कर सकती। इस प्रकार अपने आत्मा में स्थित महती शक्ति को जो विवेकीजन अनुभव करते हैं, उन्हें ही परमसुख अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है ॥१२॥

12. God is one, He is the Supreme controller, pervading all beings and who changes the one matter into multifarious forms. The wise who realise Him, thus seated with their ownselves, attain elernal bliss, none else.

---

*टिप्पणी—एक रूप से यहाँ अव्यक्त प्रकृति से तात्पर्य्य है। वह परिणामिनी होने से अनेक रूपोंवाली है।

†टिप्पणी—आत्मस्थं पद से सिद्ध है कि वह परमात्मा हम से एक पृथक् सत्ता है, जो हमारे आत्मा के भीतर भी स्थित है। इस मंत्र में परमात्मा जीवात्मा और प्रकृति तीनों की पृथक् सत्ता स्वीकार की गई है।

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥१३॥

पदार्थ—वह (नित्यः) नित्य है, (अनित्यानां)* अनित्य पदार्थों में (चेतनः) चेतन है (चेतनानाम्) चेतनों में (एकः) एक (बहूनां) बहुतों की (यः) जो (विदधाति) रचता है (कामान्) कामनाओं को। (तम) उस (आत्मस्थं) आत्मा में स्थित [ब्रह्म] को (ये) जो (अनुपश्यन्ति) अनुभव करते हैं (धीराः) विवेकीजन (तेषां) उन्हें (शान्तिः) शान्ति (शाश्वती) स्थायी (न) नहीं (इतरेषाम्) दूसरों को ॥१३॥

व्याख्या—संसार के नश्वर पदार्थों में वह ब्रह्म अविनाशी, नित्य, सदा एकरस रहनेवाला है। चेतन पदार्थों में जीव और ब्रह्म दो सत्तायें हैं। जीव अनेक होते हुए भी प्रलयकाल और मृत्यु के

*टिप्पणी (क)—कई पुस्तकों में पाठ "नित्यो नित्यानां" है। उसका अर्थ यह है कि वह ब्रह्म नित्यों में नित्य है। वैशेषिक दर्शन में कणाद मुनि ने नित्य का लक्षण किया है "सदकारणवन्नित्यम्" अर्थात् जो पदार्थ है, और जिसका अन्य उपादान कारण नहीं, वह नित्य है। इस लक्षण से प्रकृति जीव और ब्रह्म तीनों नित्य सिद्ध होते है। भगवान् को इन नित्य पदार्थों में विशेष रूप से नित्य क्यों कहा गया, इसका कारण यह है कि प्रकृति नित्य होती हुई भी विकारिणी है, ब्रह्म में विकार नहीं है। जीव नित्य होता हुआ भी अविद्या में अपने आप को "मैं मर गया, मैं अनित्य हूं" समझता है। ब्रह्म में यह अवस्था नहीं, इससे वह नित्यों में नित्य है।

(ख) चेतन जीवात्मा अनेक हैं, और ब्रह्म से पृथक् सत्ता रखते हैं। यह भाव मंत्र में 'चेतनश्चेतनानां' बहुवचनान्त पाठ सिद्ध करता है।

अनन्तर जब तक दूसरी देह को प्राप्त नहीं होते, तब तक उनकी चेतनता प्रकट नहीं होती। परन्तु ब्रह्म कभी भी इस अवस्था में न आकर सदा चेतन रहता है। इसलिये ऋषि ने मंत्र में कहा कि वह ब्रह्म चेतनों में भी चेतन है। इस प्रकार के ब्रह्म को जो अनुभव करते हैं, उन्हें स्थायी परम शांति प्राप्त होती है, दूसरों को नहीं। वह अकेला ही परमात्मा जीवों के कर्मफलों के अनुसार अनेक प्रकार के शरीरों और पदर्थों को प्रदान करके, उनकी कर्मानुसार कामनाओं को पूर्ण करता रहता है ॥१३॥

13. He is eternal among all transients. He is super conscious among all conscious beings. He alone provides for the desires of the mən, according to their deeds. Only the men who realise Him seated in their ownselves – attain eternal bliss and none else.

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥१४॥

पदार्थ—[तत्] वह [एतत्] यह है [इति] ऐसा [मन्यन्ते] मानते हैं [अनिर्देश्यं] संकेत से जो बतलाया नहीं जा सकता [परमं] परम [सुखम्] सुखमय (ब्रह्म) [कथं] कैसे [नु] निश्चय से [तत्] उस ब्रह्म को [विजानीयां] मैं जानूं ? [किम्+उ] क्या [भाति] वह स्वयं प्रकाशित है ? [विभाति वा] अथवा किसी अन्य के प्रकाश से प्रकाशित होता हुआ विविध रूप से चमकता है ? ॥१४॥

व्याख्या—नचिकेता, यम से पूछता है कि भगवन् ! ब्रह्मदर्शी पुरुष उस परमसुखस्वरूप ब्रह्म को अनिर्देश्य, और अंगुली आदि के संकेत से बतलाया नहीं जाता, कहते हैं। "यह ब्रह्म है" ऐसा कह कर

उसका अनुभव प्रत्यक्ष की भांति कैसे कर सकते हैं, फिर मैं उस ब्रह्म को कैसे जानूं ? क्या वह स्वयं चमकता है ? अथवा सूर्य अग्नि विद्युत आदि से प्रकाशित होता है ? ॥१४॥

14, That He is—is all what can be said of Him, one who is supreme bliss, but cannot be pointed out. How am I to know Him ?—asks for, Nachiketa—Does He shine in His own light or is He bright and radiant with another's light ?

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं,
नेमाः विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१५॥

पदार्थ—(न) नहीं (तत्र) उस ब्रह्म में (सूर्यः) सूर्य (भाति) प्रकाश करता (न) नहीं (चन्द्रतारकं) चन्द्र और तारे, (न) नहीं (इमाः) ये (विद्युतः) बिजलियाँ (भान्ति) प्रकाश करतीं (कुतः) कहाँ (अयं अग्निः) यह अग्नि । (तम्) उस ब्रह्म के (एव) ही (भान्तम्) प्रकाशित होने पर (अनुभाति) पीछे से प्रकाशित होते हैं, (सर्वं) सब कुछ, (तस्य) उस ब्रह्म के (भासा) प्रकाश से (सर्वं इदं) यह सब कुछ (विभाति) विविध रूप से प्रकाशित होता है ॥१५॥

व्याख्या—मंत्र १४ में शिष्य ने प्रश्न किया था कि क्या वह ब्रह्म अग्नि सूर्यादि की भांति स्वयं चमकता है, वा सूर्यादि उसे प्रकाशित करते हैं ? इसके उत्तर में गुरु ने मंत्र १५ में कहा है—हे नचिकेता ! सूर्य चन्द्र तारागण और अग्नि प्रकाशित हो रहे हैं, परन्तु इन प्रकाशमान पदार्थों में भी इनकी अपनी चमक कुछ नहीं है,

यह भी उस प्रकाशस्वरूप ब्रह्म की शक्ति से ही प्रकाशित हो रहे हैं। इसलिये हे शिष्य ! उस ब्रह्म का प्रकाश इन चमकीले पदार्थों से बिलकुल न्यारा है। उसे तो विवेकीजन अपने आत्मा में ही अनुभव करके कृतकृत्य हो जाते हैं ॥१५॥

15. The sun does not shine Him, nor the moon nor the stars, not even these lightenings—what to speak of fire—All lights have their source in Him—everything shines with His shining and His light brightens everything.

अथ

छठी वल्ली

संगति—पांचवीं वल्ली के आठवें मंत्र से परम आत्मा का वर्णन चल रहा है। इस छठी वल्ली में भी उसी आत्मतत्व का वर्णन अधिक विस्तार से किया गया है :—

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥
एतद्वै तत् ॥१॥

पदार्थ—(ऊर्ध्वमूलः) ऊपर जिसका मूल है (अवाक्शाखः) नीचे की ओर जिसकी शाखा हैं (एषः) यह (अश्वत्थः)* अश्वत्थ वृक्ष (सनातनः)

---

*टिप्पणी—'अश्वत्थ' का पदार्थ—

(क) अ+श्व+त्थ=(अ) नहीं (श्व) कल (त्थः) ठहरनेवाला, जो नश्वर है, जिसकी आज ही सत्ता है, कल नहीं।

(ख) इसी मन्त्र में संसाररूपी अश्वत्थ वृक्ष को नाशशील लिखा है। इसी में उस अश्वत्थ का विशेषण सनातन=सदा रहनेवाला आने से कुछ परस्पर विरोधी भाव प्रकट होता है। इसमें वास्तविक रूप से विरोध नहीं, क्योंकि संसार नाशशील होता हुआ भी प्रवाहरूप से सनातन है, अर्थात् अनादि-काल से चला आ रहा है, और चलता रहेगा।

सदा रहनेवाला ।(तत् एव) वह ही (शुक्रम्) ज्योति:स्वरूप है (तत् ब्रह्म) वह ब्रह्म है (तत् एव) वह ही (अमृतम्) अमृत (उच्यते) कहा जाता है। (तस्मिन्) उसमें (श्रिता:) आश्रित हैं (लोका:) लोक (सर्वे) सब (तत्) उसे (न+अत्येति) नहीं अतिक्रमण कर सकता (कश्चन) कोई भी। (एतत् वै तत्) यह है निश्चय से वह ।।१।।

व्याख्या—हे नचिकेता! यह सनातन काल से चला आ रहा अश्वत्थ संसाररूपी वृक्ष जो है, उसका मूल ऊर्ध्व अर्थात् ऊपर है। वह सब से ऊर्ध्व उत्कृष्ट ब्रह्म ही सब से ऊपर है,और वही इसका निमित्त कारण है। प्रकृति के विकार,पञ्चतन्मात्रा,पञ्चमहाभूतादि इस संसार-वृक्ष की अवाक्=नीचे की शाखायें हैं। इस अश्वत्थ का मूल ब्रह्म है, और अमृत कहलाता है। उस ब्रह्म के आश्रित ही सब लोक-लोकान्तर हैं। कोई भी शक्ति उसके नियमों का अतिक्रमण नहीं कर सकती। हे शिष्य ! यह है वह आत्मा जिसे तूने पूछा था ।।१।।

SECTION 2

CHAPTER 6

1. The roots of this eternal tree are in the Infinite above, with branches spreading below. That infinite is ever radiant. He is great, He is called immortal, on whom all the worlds depend. No one can transcend Him.

यदिदं किं च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।२।।

पदार्थ—(यत्) जो (इदं) यह (किं च) कुछ (जगत्सर्वं) सम्पूर्ण जगत् (प्राणे) प्राणस्वरूप ब्रह्म के आश्रय से (एजति) चेष्टा करता है

(निःसृतम्) परमेश्वर से उत्पन्न हुआ हुआ यह जगत्। (महत् भयं) महान् भय (वज्रम्) वज्र के तुल्य (उद्यतं) उठा हुआ है (ये) जो धीरजन (एतत्) इस ब्रह्म को (विदुः) जान जाते हैं (अमृताः) मुक्त (ते) वे (भवन्ति) हो जाते हैं ॥२॥

व्याख्या—इस जगत् में जो कुछ भी उत्पन्न हुआ है, वह सब प्राणरूप ब्रह्म के आश्रय से ही चेष्टा कर रहा है। सूर्यचन्द्रादि सब ग्रह-उपग्रह उसी के नियम से चल रहे हैं। वह ब्रह्म एक बड़ा भय रूप है, और उठे हुए वज्र के तुल्य है। जिस प्रकार नौकर अपने स्वामी के भय और दण्ड से डरकर अपने काम में प्रवृत्त होते हैं, उसी प्रकार जगत् की सब दैवी शक्तियां, उसी के अनुशासन में रहकर अपना-अपना कार्य कर रही हैं। जो इस ब्रह्माण्ड के चालक ब्रह्म को जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं ॥२॥

2. whatever is in this world, all that is moved by Pran (the Supreme Being). He is a mighty terror like the uplifted thunderbolt. Those who know Him, attain the eternal.

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥३॥

पदार्थ—(भयात् अस्य) इसके भय से (अग्निः तपति) अग्नि तपता है, (भयात्) भय से (तपति) तपता है (सूर्यः) सूर्य। (भयात्) भय से (इन्द्रः च वायुः च) बिद्युत् और वायु (मृत्युः) मृत्यु (धावति) दौड़ता है (पञ्चमः) पांचवां ॥३॥

व्याख्या—इस भगवान् के भयरूप नियम से अग्नि और सूय में उष्णता है। इन्द्र (विद्युत्) और वायु वर्षा लाने का जो काम कर

रहे हैं, वह भी उसके नियम से ही हो रहा है। यह मृत्युरूप नियम भी उसी के प्रबन्ध से चल रहा है। यदि यह ब्रह्म शक्ति न हो, तो ब्रह्माण्ड का कार्य एक क्षण भी नहीं चल सकता। जो विवेकीजन प्रत्येक पदार्थ में उसकी सत्ता का अनुभव करते हैं, वे ही सच्चे ब्रह्म-प्राप्ति के अधिकारी हैं ।।३।।

3. The fear of His law, forces the sun to rise, the fear of His law, forces the lightening and the air to rush forward to their jobs, and finally it is the fear of His law, which forces death to work its course.

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ।।४।।

पदार्थ—(इह) इस जन्म में (चेत्) यदि (अशकत्) सका (बोद्धुं) जानने को (प्राक्) पहले (शरीरस्य) शरीर के (विस्रसः) नाश होने से। [नहीं तो] (ततः) न जान सकने के कारण (सर्गेषु लोकेषु) रचना में आनेवाले मनुष्य आदि प्राणी जिनमें रचे जाते हैं, उन लोकों में (शरीरत्वाय) शरीर धारण करने के लिये (कल्पते) समर्थ होता है ।।४।।

व्याख्या—शरीर के शिथिल और नाश से पहले ही, यदि किसी विवेकी व्यक्ति ने ब्रह्मतत्त्व को जान लिया, तो उसका जीवन सफल है। यदि इस आत्मज्ञान से वंचित रहे, तो आत्मज्ञान-साधन-रूप मानव-देह के वृथा चले जाने पर, मनुष्य को सृष्टि के अनेक लोक-लोकान्तर में अनेक बार जन्म-मरण के चक्र में पड़ करके अन्धकार में पड़ा रहना पड़ेगा ।।४।।

4. Unless in this very life, before leaving the body, one can comprehend Him, he will be born again and again, in manifold lives, in this world of creation.

यथादर्शे तथात्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके ।
यथाप्सु परीव ददृशे तथा,
गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥५॥

पदार्थ—(यथा) जैसे (आदर्शे) दर्पण में (तथा) वैसे (आत्मनि) आत्मा में (यथा) जैसे (स्वप्ने) स्वप्न में (तथा) वैसे (पितृलोके) कर्मकाण्ड अवस्था में। (यथा) जैसे (अप्सु) जलों में (परि ददृशे इव) सब ओर दिखाईसा देता है (तथा) वैसे (गन्धर्वलोके) गायन द्वारा भक्ति अवस्था में (छाया आतपयोः) छाया और धूप की (इव) भांति (ब्रह्मलोके) ब्रह्मज्ञान अवस्था में ॥५॥

व्याख्या—ब्रह्म का अनुभव आत्मा में ऐसे स्पष्ट होता है, जैसे दर्पण में मुख का। ब्रह्मज्ञान की अनुभूति को इस मन्त्र में तीन उदाहरणों से प्रकट किया गया है। कर्मकाण्डी लोग वैदिक साहित्य में 'पितर' कहलाते हैं। शुद्धभाव से सन्ध्या, अग्निहोत्र, दर्श पौर्णमास आदि यज्ञों में प्रवृत्त हुए-हुए पितर(=कर्मकांडी),अपने आत्मा में ब्रह्म का अनुभव करते हैं। परन्तु वह अनुभव अस्पष्ट है,जैसे स्वप्न अवस्था में आत्मा पदार्थों को अस्पष्ट और अशृंखल देखता है। गायन द्वारा अनेक लोग ईश्वर की जो भक्ति करते हैं,वे 'गन्धर्व' हैं। गायन द्वारा भक्ति की अवस्था का नाम ही गन्धर्वलोक है। उन्हें भी आत्मा का अस्पष्ट स्वरूप भक्ति में अनुभव होता है, जैसे जलों में शरीर का प्रतिबिम्ब दिखाई तो देता है परन्तु अस्पष्ट। ज्ञान की उच्च अवस्था ही ब्रह्मलोक है। उस अवस्था में पहुंचे हुए विवेकीजनों को ब्रह्म ऐसे स्पष्ट होता है, जैसे नेत्रों द्वारा छाया और धूप ॥५॥

5. Just as one sees himself clearly in looking glass' similarly God is visible (known) clearly within one's own-

self. Men of rituals do have His vision, but like that of a dream. His devotees absorbed in devotional songs, have a vision of His, but like that of a reflection in waters, but those who are on a high spiritual level and have real knowledge, see Him clearly like a vision of light and shade.

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥६॥

पदार्थ—(इन्द्रियाणां) इन्द्रियों के (पृथक् भावम्) पृथक् सत्ता (उदय+अस्तमयौ च) और [उन इन्द्रियों की] जागृत अवस्था उदय और स्वप्न अस्त (यत्) जो [इन्द्रियें]। (पृथक्) भिन्न-भिन्न (उत्पद्यमानानां) भूतों से उत्पन्न होनेवाली (मत्वा) जान कर (धीरः) धीर (न) नहीं (शोचति) शोक करता ॥६॥

व्याख्या—नेत्र कान आदि इन्द्रियों की पृथक् सत्ता है। वे इन्द्रियें अपने कारणरूप पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश के सूक्ष्म भूतों से उत्पन्न होती हैं। उनकी उत्पत्ति और नाश अवश्यंभावी है। परन्तु आत्मतत्त्व (जीव) इनसे पृथक् है। वह किसी से उत्पन्न नहीं होता, न ही उसका विनाश होता है। वह विलक्षण आत्मतत्त्व नित्य, अपरिणामी, अविकारी और अविनाशी है। इन्द्रियों का उदय जागृत अवस्था में और स्वप्न में अस्त हो जाता है। जब धीर पुरुष को इस तत्त्व का ज्ञान हो जाता है, तो वह शोक से रहित हो जाता है ॥६॥

6. A wise man does not grieve when he knows the distinctness of the nature of the senses from soul, that senses have a separate source of origin (five causal elements) and that they function in the waking state, but are dormant in the sleeping state.

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ।।७।।

पदार्थ—(इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रियों से (परं) सूक्ष्म (मनः) मन (मनसः) मन से (सत्त्वम्) अहंकार (उत्तमम्) सूक्ष्म है। (सत्त्वात् अधि) अहंकार से भी सूक्ष्म है (महान् आत्मा) महतत्त्व, (महतः) महतत्त्व से (अव्यक्तम्) प्रकृति (उत्तमम्) सूक्ष्म है ।।७।।

7. Mind is subtler than the senses, Ahankar is subtler than the mind, subtler than Ahankar is Mahatatva, (the visible form of matter) subtler than Mahatatva is invisible matter (प्रकृति) PRAKRITI.

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ।।८।।

पदार्थ—(अव्यक्तात्) प्रकृति से (तु) तो (परः) सूक्ष्म है (पुरुषः) परमात्मा (व्यापकः) जो व्यापक (अलिङ्ग एव च) और चिह्नरहित है। (यं) जिसको (ज्ञात्वा) जान कर (मुच्यते) छूट जाता है दुःख से (जन्तुः) प्राणी (अमृतत्वं च) और अमरपद को (गच्छति) प्राप्त करता है ।।८।।

व्याख्या—इन दो मंत्रों में बताया है कि प्रकृति के विकार क्रमशः उत्तरोत्तर स्थूल होते जाते हैं। अव्यक्त अवस्था में प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म है। जिस समय प्रकृति में रचना के लिये ईश्वर की प्रेरणा से गति उत्पन्न होती है, तो उसका पहला विकार (Change) महत्तत्त्व है, जो प्रकृति की अपेक्षा स्थूल है। महत्तत्त्व के विकार से सत्त्व उत्पन्न होता है, जिसे सांख्य की प्रक्रिया में अहंकार कहते हैं,

वह महत्तत्त्व से स्थूल है। अहंकार का विकार पञ्चतन्मात्रा मन और इन्द्रियें हैं, जो उत्तरोत्तर स्थूल होती जाती हैं। इस अव्यक्त प्रकृति को सृष्टि का रूप देनेवाले भगवान् व्यापक और चिह्नरहित हैं। वह अति सूक्ष्म हैं, वह पराकाष्ठा है। उस व्यापक पुरुष को जान कर जीव दुःखों से छूट जाता है, और मोक्ष को प्राप्त करता है ॥७-८॥

8. Supreme soul is greater than matter, Supreme soul is allpervading, imperceptible. Knowing that supreme soul, human soul is freed from all bondage (becomes immortal).

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य,
न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो,
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥९॥

पदार्थ—(न) नहीं (संदृशे) दृष्टि में (तिष्ठति) ठहरता है (रूपं) स्वरूप (अस्य) इस भगवान् का, (न) नहीं (चक्षुषा) नेत्र से (पश्यति) देखता है (कश्चन) कोई भी (एनम्) इसको। (हृदा) हृदय से (मनीषा) सङ्कल्प-विकल्प आदियों को नियन्त्रण करनेवाली मनीषा श्रेष्ठ बुद्धि से (मनसा) तथा मनन से (अभिक्लृप्तः) प्रकट होता है, (ये) जो (एतत्) इस आत्मा को (विदुः) जानते हैं (अमृताः) अमृत (ते) वे (भवन्ति) हो जाते हैं ॥९॥

व्याख्या—पूर्व मंत्र में कहा गया है कि परमात्मा अलिंग अर्थात् चिह्नरहित है। उसी की अधिक व्याख्या इस मन्त्र में की गई है। परमात्मा का कोई रूप नहीं, इसलिये वह नेत्र की दृष्टि का विषय

नहीं है। इसी प्रकार वह शब्द आदि का विषय न होने से कर्णादि इन्द्रियों से भी ग्राह्य नहीं। वह तो मनन से संकल्पादियों का नियमन करनेवाली श्रेष्ठबुद्धि से, धीर पुरुषों के हृदयाकाश में ही अनुभूत किया जा सकता है। जो इस तत्त्व को जान जाते हैं, वे मुक्तिधाम को प्राप्त होते हैं ॥९॥

9. That supreme soul is invisible – none can therefore, see Him with these eyes. He is revealed in the heart (हृदय), when mind and superior intellect join in contemplation. Those who thus know Him, attain salvation.

संगति—ईश्वरप्राप्ति के साधनरूप योग का वर्णन किया जाता है—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥१०॥

पदार्थ—(यदा) जब (पञ्च) पांच (अवतिष्ठन्ते) स्थिर होती हैं (ज्ञानानि) ज्ञान इन्द्रियां (मनसा सह) मन के साथ। (बुद्धिः च) और बुद्धि (न) नहीं (विचेष्टते) विचलित होती (ताम्) उसे (आहुः) कहते हैं (परमां) ऊंची (गतिम्) अवस्था ॥१०॥

10. The stage wherein, five senses and the mind, are under control and the intellect remains calm and stable.

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥११॥

पदार्थ—(तां) उसे (योगं) योग (इति) ऐसा (मन्यन्ते) मानते हैं (स्थिराम्) स्थिर (इन्द्रियधारणाम्) इन्द्रियों की धारणा को। (अप्रमत्तः) प्रमाद-रहित (तदा) तब (भवति) होता है (योगः) योग (हि) निश्चय से (प्रभव) उत्पत्ति (अप्ययौ) लय ॥११॥

व्याख्या—ईश्वर को तभी साक्षात्कार किया जा सकता है, जब मुमुक्षु में योग की अवस्था उत्पन्न हो जावे। योग की अवस्था का वर्णन मन्त्र १० और ११ में आता है। जब नेत्र कर्णादि पांचों ज्ञान इन्द्रियें मन के साथ स्थिर हो जाती हैं, जब चित्त की वृत्तियें निरुद्ध हो जाती हैं, और बुद्धि में विचलता नहीं रहती, उस स्थिर अवस्था को 'योग' कहते हैं। जब योगी इन्द्रियों की सब धारणाओं को एकाग्र करके, अन्तर्मुख होकर आत्मा में रमण करता है, उस अवस्था में पहुंचा हुआ योगी प्रमादरहित होकर आत्मदर्शन के लिये यत्नवान् होता है। जब योगी सिद्धावस्था में पहुंचता है, तो योग द्वारा उसके अन्दर आत्मज्ञान और सत्त्वगुणयुक्त संस्कार का प्रभव (=उदय) और बाह्य सांसारिक विषयों के दुष्ट संस्कारों का अप्यय अर्थात् नाश हो जाता है। उसकी प्रवृत्ति बाह्य ज्ञान से निवृत्त होकर अन्तःज्ञान की ओर प्रवृत्त हो जाती है ॥१०, ११॥

11. That stage is called yoga wherein all thə senses and their functioning remains unperturbed, then alone one becomes vigilant, and then spiritual knowledege dawns on him, and all worldly attachments vanish.

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥१२॥

पदार्थ—(न एव) नहीं (वाचा) वाणी से (न मनसा) न मन से (प्राप्तुं शक्यः) पाया जा सकता है (न चक्षुषा) नहीं नेत्र से। (अस्ति)

वह है (इति) ऐसे (ब्रुवतः) कहनेवाला (अन्यत्र) उसके बिना (कथं) कैसे (तत्) वह (उपलभ्यते) प्राप्त होता है [अर्थात् किसी प्रकार नहीं] ॥१२॥

12. He is realised neither by speech nor by mind, nor is He seen with mortal eyes. 'He is' is all what is said about Him. Besides thjs, there is no other way of comprehending Him.

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः ।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥१३॥

पदार्थ—(अस्ति) है (इति एव) इस प्रकार (उपलब्धव्यः) जानना चाहिये (तत्त्वभावेन च) और तत्त्वभाव=तत्त्वज्ञान से जानना चाहिये (उभयोः) अस्ति नास्ति इन दोनों प्रकार की [उपलब्धियों] में से । (अस्ति) वह है (इति एव) ऐसा जब (उपलब्धस्य) अनुभव कर लिया [तो फिर] (तत्त्वभावः) तत्त्वभाव (प्रसीदति) अभिमुख हो जाता है ॥१३॥

व्याख्या—वह ब्रह्म मन वाणी व नेत्र का विषय नहीं । वह (आत्मशक्ति) है, इसके विना और कुछ नहीं कहा जाता । अस्ति (है) नास्ति (नहीं है) इन दो प्रकार की उपलब्धियों में से 'वह है' ऐसा ज्ञान और दृढ़ विश्वास होने पर, उस ब्रह्म का तत्त्वभाव (तत्त्व-ज्ञान) स्वयमेव हृदय में प्रादुर्भूत हो जाता है ॥१२, १३॥

13. There are two conceptions about Him—Being & not being—out of these two, the faith that He is—reveals the true nature of that Supreme reality,

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥१४॥

पदार्थ—(यदा) जब (सर्वे) सब (प्रमुच्यन्ते) छूट जाती हैं (कामा:) कामनायें (ये) जो (अस्य) इस जीव के (हृदि) हृदय में (श्रिता:) स्थित हैं। (अथ) इसके अनन्तर (मर्त्य:) मरणधर्मा मनुष्य (अमृत:) अमृत (भवति) हो जाता है (अत्र) इस अवस्था में (ब्रह्म) ब्रह्म को (समश्नुते) प्राप्त हो जाता है ।।१४।।

14. When one gets rid of all desires, that emanate from the mind, then the mortal becomes immortal, and thereby realises the great Lord.

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद् ध्यनुशासनम् ।।१५।।

पदार्थ—(यदा) जब (सर्वे) सब (प्रभिद्यन्ते) खुल जाती हैं (हृदयस्य) हृदय की (इह) इस शरीर में (ग्रन्थय:) गांठें। (अथ) इसके अनन्तर (मर्त्य:) मनुष्य (अमृत:) अमृत (भवति) हो जाता है (एतावत्) इतना (हि) ही (अनुशासनम्) उपदेश है ।।१५।।

व्याख्या—सब शास्त्रों का इतना ही आदेश है कि—यदि मनुष्य अमृत होना चाहता है, तो हृदय की कामनायें छोड़ दे। तब हृदय की गांठें खुल जाती हैं। संसार में कामनाओं = वासनाओं से ही मनुष्य बंधा हुआ है। जब अकाम हो जाता है, तो उसके लिये ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग खुल जाता है। हृदय की मोहममता अहंकार रागद्वेषादि गांठें ही बन्धन का हेतु हैं। सब शास्त्रों का अन्तिम यही अनुशासन आदेश और उपदेश है ।।१४-१५।।

15. When one gets free from all the entanglements of the mind—then the mortal verily becomes immortal. This is the sum total of all teachings.

शतं चैका च हृदयस्य नाड्य-
स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति,
विष्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥१६॥

पदार्थ—(शतं च एका च) सौ और एक अर्थात् एक सो एक (हृदयस्य) हृदय की (नाड्यः) नाड़ियां है*, (तासां) उनमें (मूर्धानम्)

***टिप्पण**—यहां हृदय से मस्तिष्कस्थ हृदय ग्राह्य है, कण्ठ के नीचे रक्तसंचार का साधन हृदय नहीं। वैदिक साहित्य में दो स्थानविशेषों को हृदय पद से व्यवहृत किया गया है—

(१) एक हृदय वह है, जो एक मांसपिण्ड ग्रीवा के नीचे, दो स्तनों के मध्य रक्तसंचार का साधन है, जहां धक्-धक् सी धड़कन होती है।

(२) दूसरा हृदय-स्थान मस्तिष्क में है, जो जीवात्मा का आवास-स्थान है। तदर्थ देखो—'हृदि ह्येष आत्मा' (प्रश्नोपनिषद् ३।६, छान्दोग्य ८।३।३, बृहदारण्यक उपनिषद् ४।३।७)।

मस्तिष्क में आज्ञाकन्द नाम की दो ग्रन्थियां हैं; इन्हें आज्ञाचक्र भी कहा जाता है। यह दक्षिण और वाम भेद से दो भागों में विभक्त हैं। ये ग्रन्थियां ब्रह्म-गुहा के दोनों ओर विद्यमान हैं। इनकी आकृति मनुष्य के अंगूठों के अग्र पर्व के समान होती है। जब इन दोनों को आमने-सामने मिला-कर बिठाया जाय, तो उनके मध्य में थोड़ा अवकाश रहता है। इसका नाम ब्रह्म-गुहा है। यही ब्रह्म-गुहा हृदय कहाता है, और इसी में जीव का निवास है। मस्तिष्क की सब प्रकार की ज्ञान-तन्तुओं का सम्पर्क इसी स्थान से रहता है। सारे शरीर में फैली हुई ज्ञान-तन्तुओं द्वारा ही एक स्थान में बैठा हुआ है। सारे शरीर में

सिर में ब्रह्मरन्ध्र की ओर (अभिनिःसृता) निकलती है (एका) एक [सुषुम्णा नाम] नाड़ी। (तया) उससे (ऊर्ध्वम्) ब्रह्माण्ड छिद्र की ओर से (आयन्) मृत्यु समय में निकलता हुआ आत्मा (अमृतत्वम्) मुक्ति को (एति) प्राप्त होता है, (विष्वङ्) नाना प्रकार की गतिवाली (अन्याः) दूसरी सौ नाड़ियां (उत्क्रमणे) प्राण निकलने के समय (भवन्ति) होती हैं ।।१६।।

व्याख्या—हृदय(=मस्तिष्क)के साथ एक सौ एक मुख्य नाड़ियों का सम्बन्ध है। मरण-काल में मस्तिष्क में स्थित जीवात्मा इन्हीं नाड़ियों के द्वारा इस देह से बाहर निकलता है। योगियों का अनुभव है कि जो महात्मा मूर्धा की ओर निकलनेवाली सुषुम्णा नाड़ी द्वारा ब्रह्मरंध्र से आत्मा की प्राण वायु को बाहर निकालते हैं, वे अमृत को प्राप्त होते हैं। शेष जीवों का अन्य सौ नाड़ियों में से किसी एक के द्वारा मरण-काल में आत्मा बाहर निकल जाता है। वे नाड़ियें नाना-

---

जीव सुख दुःख की अनुभूति करता है। अथर्ववेद काण्ड १०, सूक्त २, मन्त्र २६ में हृदय मस्तिष्क में भी है, ऐसा वर्णन आया है—'मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्' ।। वेद के इसी प्रकरण में मन्त्र ३१, ३२, ३३ में बड़े विस्तार से यहां जीवात्मा का निवास-स्थान बताया गया है ।

(३) तैत्तिरीयारण्यक ३।१०।८।४-६ में भी मन श्रोत्र तथा वाणी का सम्पर्क भी इसी हृदय से लिखा है—'मनो हृदये श्रोत्रं हृदये वाक् हृदये।'

(४) छान्दोग्योपनिषद् ८।३।३; बृहदारण्यकोपनिषद् ४।३।७ में भी इसी हृदय में आत्मा का आवास बताया गया है—"हृदि ह्येष आत्मा"।

(४) इसी मस्तिष्कगत हृदय में १०१ मुख्य नाड़ियां (ज्ञानतन्तु) हैं। उनकी आगे शाखायें प्रशाखायें निकल कर ७२७२१०२०१ संख्या हो जाती है। देखो—प्रश्नोपनिषद् ३।६।।

विश्व गतियों के देनेवाली होती हैं, अर्थात् उन नाड़ियों में से निकले हुये जीव अनेक प्रकार की उच्च और नीच योनियों में जन्म पाते हैं ॥१६॥

16. There are 101 nerves which start from fhe heart in the head, one of these takes off in the crown of the head. When the soul on death of a man leaves his body through this nerve, he attains salvation. If soul gets out through other openings. he is born again and again.*

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा,
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
तं स्वाच्छरीरात् प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण,
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥१७॥

पदार्थ—(अङ्गुष्ठमात्रः) अंगूठा परिमाणां (पुरुषः) पुरुष (अन्तरात्मा) आत्मा के भीतर रहनेवाला (सदा) सदा (जनानां) मनुष्यों के (हृदये) हृदय में (सन्निविष्टः) स्थित है। (तम्) उस परमपुरुष को (स्वात्) अपने (शरीरात्) शरीर से (प्रवृहेत्) पृथक् करे (मुञ्जात्) मुञ्ज से

---

*1. *There are two organs which are called hearts in Vedic literature. For this see note on Page 75-77.*

2. This also refers to the heart in the brain and the nerves 101 are primary nerves which have branches and sub-branches totalling 727210201 in all. This calculation was known to our sages long before the science of anatomy was known to the West. See Prashna Upnishad 3/6.

†टिप्पणी—परमात्मा को अंगुष्ठ-परिमाण क्यों कहा गया है, इस के लिए देखो पृष्ठ ७५ मंत्र १२ की टिप्पणी।

(इव) जैसे (इषीका)† सींक=तील को [पृथक् करते हैं] (धैर्येण) धैर्य से (तम्) उस परमपुरुष को (विद्यात्) जाने (शुक्रम्) ज्योतिःस्वरूप (अमृतं) अमृत को ॥१७॥

व्याख्या—वह अंगुष्ठ परिमाण सर्वान्तर्यामी परमात्मा सब मनुष्यों के हृदय में स्थित है। योगी धैर्य से उस परम पुरुष को अपने शरीर और आत्मा से पृथक् ऐसे अनुभव करे, जैसे मुञ्ज में से तील को पृथक् किया जाता है। उस परमात्मा को परम ज्योतिःस्वरूप और अमृतरूप अनुभव करने से जीव को अमृतपद की प्राप्ति होती है ॥१७॥

17. God called, as if, of the size of a thumb is ever concealed in the brain of every man, Him men realise with great patience and perseverance, as distinet and separate from soul, just as a blade of grass is separated from its fibre—know Him who is pure, radiant and immortal.*

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा,
विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नाम् ।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्यु-
रन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥१८॥

---

†**टिप्पणी**—मुञ्ज और इषीका का दृष्टान्त इस लिये दिया है कि जैसे मुञ्ज के अन्दर की तील को बड़ी सावधानी से पृथक् किया जाता है, इसी प्रकार जीवात्मा के अन्दर भी निवास करनेवाले परमात्मा को बड़े धैर्य और सावधानी से पृथक् अनुभव करे।

***(God called of the size of thumb). For this see the note on Page 75-77.*

पदार्थ— (मृत्युप्रोक्तां) यम से कही गई (नचिकेतः) नचिकेता (अथ) अनन्तर (लब्ध्वा) प्राप्त करके (विद्याम् एतां) इस विद्या को (योगविधिं च) और योगविधि को (कृत्स्नाम्) सम्पूर्ण। (ब्रह्मप्राप्तः) ब्रह्म को प्राप्त हुआ (विरजः) अज्ञानरहित (अभूत्) हो गया, (विमृत्युः) मृत्युरहित (अन्यः अपि) और भी कोई (एवं) इस प्रकार (यः) जो (वित्) जाननेवाला (अध्यात्मम्) अध्यात्मविद्या को (एव) ही ॥१८॥

व्याख्या—इस मन्त्र में कठोपनिषद् की महिमा का वर्णन किया गया है। इसमें यम और नचिकेता के सम्वाद से जैसे नचिकेता को यम आचार्य से ब्रह्मज्ञान और योगविधि प्राप्त हुई, जिससे वह मृत्यु के चक्र से छूटकर ब्रह्म को प्राप्त हुआ, वह पुरुष भी नचिकेता की भांति आत्मविद्या को अनुभव करके मुक्त हो जाता है, यह भाव दिया गया है ॥१८॥

18. Nachiketa, having learnt, the spiritual knowledge and also the entire mode of Yoga—from his preceptor Yama, realised God. His ignorance was dispelled, and he became immortal—whosoever will similarly know this spiritual knowledge, shall likewise attain salvation.

शान्तिपाठः

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं
करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु।
मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

इस मन्त्र की व्याख्या उपनिषद् के आरम्भ में कर दी गई है॥

॥ इति कठोपनिषद् समाप्ता॥

—:o:—

* मन्त्रों की वर्णानुक्रमणिका *

वैद्य पं० रामगोपाल जी शास्त्री की

संक्षिप्त जीवनी

पण्डित जी का जन्म सन् १८९१ मास अगस्त (भाद्रपद कृष्णा जन्माष्टमी) के दिन मजंग लाहौर (पाकिस्तान) में हुआ था। आपकी माता का नाम मखनी देवी तथा पिता का नाम श्री रामदास जी वधवा था।

पण्डित जी ने बाल्यकाल में ही डी० ए० वी० कालेज लाहौर के वैदिक विभाग में शिक्षा-दीक्षा पाई थी। प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, उपाध्याय तथा शास्त्री की संस्कृत परीक्षाएं उत्तीर्ण करके अंग्रेजी में एफ० ए० पास किया।

सन् १९१५ से १९२८ पर्यन्त डी० ए० वी० कालेज लाहौर के अन्तर्गत प्रोफेसर और रिसर्च स्कालर रहे। अनुसंधान विभाग द्वारा संपादित तथा प्रकाशित पुस्तकें उनकी निम्नलिखित हैं—

(१) अथर्ववेदीय बृहत् सर्वानुक्रमणिका
(२) अथर्ववेदीय दन्त्योष्ठ्यविधि
(३) अथर्ववेदीय कौत्सव्य निघण्टु
(४) वेदों में आयुर्वेद
(५) क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है

सन् १९२८ में देश के स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के कारण कालेज छोड़ना पड़ा। तदनंतर आयुर्वेद का सम्पूर्ण अध्ययन करके चिकित्सा कार्य करते रहे।

स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्होंने लाहौर में पंजाब केसरी लाला लाजपत राय जी का स्टेचु सन् १९२८ में खड़ा किया (यह स्टेचु आजकल शिमला में है)। सन् १९३० में लवण सत्याग्रह में भाग लेने के कारण एक वर्ष कारागार में रहे।

इस अवसर में उन्होंने लगभग २० ग्रन्थ रचे, तथा संपादित किए। श्री पूज्य वैद्य जी का ९ जून रविवार १९७४ को हृद्रोग से स्वर्गवास हो गया।

विशेष—जो श्री माननीय वैद्य जी के जीवन के सम्बन्ध में अधिक जानना चाहें, वे 'स्व० श्री वैद्य रामगोपाल जी शास्त्री स्मृति ग्रन्थ देखें।

पं० रामगोपाल शास्त्री वैद्य

की

अन्य लिखित व सम्पादित पुस्तकें

१	ईशोपनिषद् हिन्दी तथा अंग्रेजी	१-२५ पैसे
२.	केनोपनिषद् हिन्दी तथा अंग्रेजी	१-२५ पैसे
३.	वेदों में आयुर्वेद	१०-०० रु०
४.	दस अवतारों की कल्पना	१-०० रु०
५.	संस्कार-विधि-मण्डनम्	३-०० रु०
६.	वेदों में आर्यदास युद्ध सम्बन्धी पाश्चात्य मत का खण्डन	०-७५ पैसे
७.	वैदिक रुद्र और शिवशंकर महादेव	०-७५ पैसे
8.	Western Theory of Arya Aborigines wars in the Vedas Exploded	0-75 P.

मिलने का पता—

कविराज कृष्णगोपाल एम० ए० वैद्य
१६६८, आर्यसमाज मार्ग, करोल बाग,
नई दिल्ली—११०००५